मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 88 ● वर्ष 10, अंक 2-7 ● अप्रैल-सितम्बर 2020 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

कोरोना ने खोली पूँजीवादी चिकित्सा-व्यवस्था की पोल 11

महामारी और लॉकडाउन ज़िम्मेदार कौन है? क़ीमत कौन चुका रहा है? 8-9

एक महान क्रान्तिकारी की आख़िरी लड़ाई 14

आरएसएस और भाजपा के निर्माणाधीन "हिन्दू राष्ट्र" में मज़दूरों की क्या जगह है?

सम्पादक मण्डल

अयोध्या में राम मन्दिर के भूमि पूजन के साथ शायद बहुत से मज़दूर भाई-बहन भी कुछ ख़ुश हुए होंगे। हो सकता है कि उनमें से भी कुछ को लगा हो कि अब रामराज्य की स्थापना हो रही है, अब "हिन्दू राष्ट्र" बन रहा है, अब शायद उन्हें तंगहाली, बेरोज़गारी और भूख-कुपोषण से मुक्ति मिल जायेगी। ऐसे में, हम आज के दौर की कुछ ठोस सच्चाइयों को आपके सामने रखना चाहते हैं और आपके मन में कुछ सवाल खड़े करना चाहते हैं।

भाजपा, संघ परिवार और मोदी-शाह सरकार "हिन्दू राष्ट्र" बनाने की कोशिश कर रहे हैं, उसमें मज़दूरों की स्थिति क्या है? ख़ास तौर पर, हिन्दू मज़दूरों की स्थिति क्या है? आइए, एक निगाह कुछ ज़मीनी सच्चाइयों पर डालते हैं।

पिछले 6 साल से "हिन्दू हृदय सम्राट" मोदी की भाजपा सरकार द्वारा निर्माणाधीन "हिन्दू राष्ट्र" में क़रीब 12 करोड़ रोज़गार छिन चुके हैं। बेरोज़गारी आज़ादी के बाद से अपने चरम पर है। बताने की ज़रूरत नहीं है कि इनमें से अधिकांश रोज़गार मज़दूरों व निम्न मध्यवर्गीय मेहनतकश जमातों के थे। अर्थव्यवस्था का संकट 2011 से ही भारत को झकझोर रहा था। 2018 से अर्थव्यवस्था का सिकुड़ना लगातार जारी था। मोदी सरकार आज अपनी नाकामयाबी का ठीकरा कोरोना संकट पर फोड़ना चाहती है, लेकिन सच यह है कि कोरोना संकट शुरू होने से पहले से ही नोटबन्दी के कारण चार करोड़ नौकरियाँ जा चुकी थीं। कोरोना महामारी पर सही समय पर सही क़दम न उठा पाने के कारण मोदी सरकार ने आनन-फ़ानन में बिना किसी तैयारी या योजना के जो लॉकडाउन किया, उसने करोड़ों नौकरियाँ और छीन लीं। **इसके साथ देश में बेरोज़गारों की आबादी 30 करोड़ से ऊपर जा चुकी है। क्या आपको पता है कि इनमें से 85 फ़ीसदी से ज़्यादा हिन्दू हैं? इनकी स्थिति अभी क्या है? ये मज़दूर भुखमरी और कुपोषण झेल रहे हैं। कभी गाँव, तो कभी एक शहर से दूसरे शहर नौकरी की तलाश में भाग रहे हैं। कोरोना से मौत का ख़तरा उठा रहे हैं, क्योंकि दूसरी ओर भूख से मौत मुँह बाए खड़ी है। इस समय में भी, मोदी सरकार इन मज़दूरों को रेलवे किराये, बस किराये, हवाई जहाज़ किराये आदि से लूटने में लगी हुई है। यह है इन करोड़ों बेरोज़गार हिन्दू मज़दूरों की "हिन्दू राष्ट्र" में स्थिति।**

मोदी के शासनकाल में ही देश की जनता के औसत उपभोग ख़र्च में 27 प्रतिशत की कमी आयी है। याद रखें, इसमें पूँजीपति वर्ग का उपभोग भी शामिल है जो कि अश्लीलता, नंगई और बेशर्मी के साथ इस दौर में भी बढ़ा है! यानी आम मेहनतकश जनता के उपभोग ख़र्च में 27 प्रतिशत से कहीं ज़्यादा कमी आयी है। कुछ आकलनों के अनुसार यह कमी 30 से 40 प्रतिशत के क़रीब हो सकती है। यानी आज से छह साल पहले देश का आम मेहनतकश जितना खा-पहन पा रहा था, अपने बच्चों को जैसा भोजन आदि मुहैया करा पा रहा था आज उसका दो-तिहाई ही दे पा रहा है। इतने से ही देश में आम मेहनतकश आबादी में बढ़ते कुपोषण, भुखमरी और आत्महत्या की हालत को भी समझा जा सकता है।

याद रहे कि ये हालात झेल रहे मज़दूरों का क़रीब 85 फ़ीसदी हिन्दू मज़दूर ही हैं। यानी कि इस "रामराज्य" और "हिन्दू राष्ट्र" में मज़दूरों-मेहनतकशों को पेट पर पट्टी बाँधकर राम भजन करना है या कटोरा पकड़कर अयोध्या में भावी राम मन्दिर के बाहर बैठना है! इस तथाकथित "हिन्दू राष्ट्र" के असली मालिक अम्बानी, अडानी और दूसरे पूँजीपति हैं जिनकी दौलत बढ़ाने के लिए मज़दूरों की हड्डियाँ तक निचोड़ डालने की छूट दी जा रही है। कोरोना संकट के दौर में जब आम मेहनतकश जनता के रोटियों के लाले पड़े हुए हैं तब अम्बानी की सम्पत्ति हज़ारों करोड़ बढ़ गयी और वह दुनिया का पाँचवा सबसे अमीर लुटेरा बन गया है।

देश के सकल घरेलू उत्पाद

(पेज 6 पर जारी)

अभूतपूर्व बेरोज़गारी : यह कोई दैवीय आपदा नहीं, पूँजीवाद और मोदी सरकार की पैदा की हुई है!

झूठे मुद्दों की भूलभुलैया से निकलो, रोज़गार के लिए सड़कों पर उतरो!

देश आज अभूतपूर्व बेरोज़गारी का सामना कर रहा है। सरकार या तो इस समस्या से पूरी तरह आँख चुराए हुए है या फिर जीडीपी में भारी गिरावट की तरह इसे भी "दैवी आपदा" साबित करने की कोशिश कर रही है। लेकिन अगर आपकी आँखों पर भक्ति की पट्टी नहीं बँधी है तो इस सच्चाई को समझना क़तई मुश्किल नहीं है कि बेरोज़गारी की इय भयावह हालत की ज़िम्मेदार पूरी तरह मोदी सरकार और उसके कारनामे हैं। अगर आप अब भी आँखों से यह पट्टी उतारने के लिए तैयार नहीं हैं, तो आपको शायद तब ही समझ में आयेगा जब बेरोज़गारी और महँगाई की आग आपके घर को झुलसाने लगेगी। उन जर्मनीवासियों की तरह जिनकी हिटलर भक्ति तब टूटी जब जर्मनी पूरी तरह बर्बाद हो गया।

हर साल दो करोड़ रोज़गार देने का जुमला उछालकर सत्ता में आये मोदी ने आने के साथ ही वे सारे काम करने शुरू कर दिये जिनसे रोज़गार पैदा होने के बजाय और घटते ही। दरअसल पूरी दुनिया के पैमाने पर पूँजीवादी व्यवस्था भीषण संकट का शिकार है जिसका कोई स्थायी इलाज उसके पास नहीं है। मोदी के पास इस संकट को दूर करने का कोई उपाय तो था नहीं, उल्टे भाजपा सरकार ने देशी-विदेशी पूँजीपतियों को लूट की खुली छूट देने के लिए जो क़दम उठाये उनसे अर्थव्यवस्था की हालत और खस्ता होती गयी। रही-सही कसर नोटबन्दी और जीएसटी ने पूरी कर दी। 2019 के शुरू में जब यह बात सामने आयी कि पिछले 45 वर्ष में सबसे ज़्यादा बेरोज़गारी देश में हो चुकी है तो सरकार ने बेरोज़गारी के आँकड़े देना ही बन्द कर दिया। लेकिन सेंटर फ़ॉर मॉनीटरिंग इण्डियन इकॉनमी (सीएमआईई) ने पिछले वर्ष ही बताया था कि 2014 से 2019 के बीच क़रीब 5 करोड़ लोगों का रोज़गार छिन गया।

इस वर्ष मार्च में कोरोना को रोकने के नाम पर बिना किसी तैयारी के जिस तरह अचानक लॉकडाउन लगाया गया और और बिना किसी योजना के बढ़ाया गया, उसने हालात और भी ख़राब कर दिये। अब हालात इतने बिगड़ चुके हैं कि मामला इस सरकार के हाथों से निकल चुका है। इण्डियन एक्सप्रेस के अनुसार, केन्द्र सरकार के जॉब पोर्टल पर जुलाई-अगस्त के 40 दिनों में 69 लाख बेरोज़गारों ने रजिस्टर किया जिसमें काम मिला मात्र 7700 को यानी सिर्फ़ 0.1% लोगों को, यानी 1000 में सिर्फ़ 1 आदमी को। केवल 14 से 21 अगस्त के बीच 1 सप्ताह में 7 लाख लोगों ने रजिस्टर किया जिसमें

(पेज 16 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

क्या आप मज़दूर बिगुल के रिपोर्टर बनेंगे?

क्या आप चाहते हैं कि मज़दूरों के जीवन, उनके काम के हालात, उनकी समस्याओं और संघर्षों के बारे में आप जैसे देश के करोड़ों मज़दूरों-कर्मचारियों को और देश के आम नागरिकों को पता चले? क्या आप चाहते हैं कि मज़दूरों की ख़बरें जो हर मीडिया से ग़ायब रहती हैं, वे मज़दूरों के अपने अख़बार के ज़रिये लोगों तक पहुँचें?

तो कलम उठाइए और अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव हमें भेजिए।

'मज़दूर बिगुल' आपका अपना अख़बार है। यह उन तमाम मेहनतकशों की आवाज़ है जिनकी बात इस देश के दर्जनों टीवी चैनलों और हज़ारों अख़बारों में कहीं सुनायी नहीं देती, मगर जिनकी मेहनत के बग़ैर यह देश एक दिन भी चल नहीं सकता।

आपको अगर टाइप करने में समस्या है तो काग़ज़ पर लिखकर उसकी फ़ोटो लेकर हमें व्हाट्सऐप पर भेज दीजिए। आप फ़ोन पर, व्हाट्सऐप पर या बिगुल के साथियों से मिलकर भी उन्हें जानकारियाँ दे सकते हैं। इसके बारे में कुछ भी जानने के लिए हमसे सम्पर्क करिए या अपने इलाक़े में 'मज़दूर बिगुल' बाँटने वाले साथियों से बात करिए।

आप इन तरीक़ों से अपनी बात हमारे तक पहुँचा सकते हैं :

डाक से भेजने का पता : **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**

ईमेल से भेजने का पता : **bigulakhbar@gmail.com**

व्हाट्सऐप नम्बर : 9721481546

झूठे मुद्दों की भूलभुलैया से निकलो, रोज़गार के लिए सड़कों पर उतरो!

(पेज 16 से आगे)

है? किसी भी लोकतांत्रिक समाज में भोजन, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य और शिक्षा पाना हर नागरिक का बुनियादी अधिकार होता है।

जो लोग विकास के लिए निजीकरण को ज़रूरी समझते हैं उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि दुनिया के विकसित पूँजीवादी देशों में भी भारत से कहीं ज़्यादा सरकारी कर्मचारी हैं। भारत में आबादी के अनुसार सरकारी कर्मचारियों का सबसे कम अनुपात है। कुछ साल पहले वर्ल्ड बैंक के एक अध्ययन में पाया गया कि भारत की 2.5 प्रतिशत से भी कम आबादी सरकारी नौकरी में कार्यरत थी, जो मलेशिया और श्रीलंका जैसे देशों से भी कम था। अमेरिका और यूरोपीय देशों में सरकारी रोज़गार का अनुपात बहुत अधिक है। स्कैंडिनेवियाई देशों में लगभग 15 प्रतिशत और अमेरिका और पश्चिमी यूरोप में 6-8 प्रतिशत आबादी सरकारी नौकरी में है। अमेरिका में कुल रोज़गार का लगभग 17 प्रतिशत सरकारी है। कुछ राज्यों में यह 25 प्रतिशत तक है। यूरोपीय यूनियन के देशों में कुल रोज़गार का लगभग 16 प्रतिशत सरकारी है।

दरअसल सभी को रोज़गार देने के लिए तीन चीज़ें होनी चाहिए – काम करने योग्य लोग, विकास की सम्भावनाएँ और प्राकृतिक संसाधन। हमारे यहाँ ये तीनों चीज़ें प्रचुर मात्रा में मौजूद हैं। फिर भी अगर लोगों को रोज़गार नहीं मिल रहा है तो यह सरकार की मंशा और देश में अपनाये गये विकास के रास्ते का सवाल है। करोड़ों मज़दूर और पढ़े-लिखे नौजवान, जो शरीर और मन से तन्दरुस्त हैं और काम करने के लिए तैयार हैं, उन्हें काम के अवसर से वंचित कर दिया गया है और मरने, भीख माँगने या अपराधी बन जाने के लिए सड़कों पर धकेल दिया गया है। आर्थिक संकट के गहराने के साथ हर दिन बेरोज़गारों की तादाद में बढ़ोत्तरी होती रही है। बहुत बड़ी आबादी ऐसे लोगों की है जिन्हें बेरोज़गारी के आँकड़ों में पहले भी नहीं गिना जाता था, लेकिन वास्तव में उनके पास साल में कुछ दिन ही रोज़गार रहता है या फिर कई तरह के छोटे-मोटे काम करके भी वे मुश्किल से जीने लायक कमा पाते हैं। हमारे देश में काम करने वालों की कमी नहीं है, प्राकृतिक संसाधनों की कोई कमी नहीं है, जीवन के हर क्षेत्र में बुनियादी सुविधाओं के विकास और रोज़गार के अवसर पैदा करने की अनन्त सम्भावनाएँ मौजूद हैं, फिर भी इस क़दर बेरोज़गारी क्यों मौजूद है? ये वे सवाल हैं जिन पर नौजवानों को सोचना चाहिए और सरकार के सामने सवाल खड़े करने चाहिए। बेवजह के मुद्दों में उलझाकर रोज़गार के मूल सवाल से ध्यान भटकाने की कोशिशों में उन्हें नहीं फँसना चाहिए।

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – **लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 9721481546, 9971196111
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 8853093555
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 5/- रुपये वार्षिक – 70/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 2000/- रुपये

कोरोना के बहाने मज़दूर-अधिकारों पर मोदी सरकार की डकैती

एक ऐसे वक़्त में जब कोरोना महामारी से पूरा देश जूझ रहा है फ़ासीवादी मोदी सरकार लगातार श्रम क़ानूनों पर हमले कर रही है और मज़दूरों के रहे-सहे अधिकारों को भी ख़त्म करने की पूरी तैयारी कर चुकी है।

कोरोना महामारी के कारण पहले से ही डगमगा रही वैश्विक अर्थव्यवस्था जिस गहरी मन्दी में धँसने की ओर जा रही है उसमें पूँजीपति वर्ग का मुनाफ़ा ना मारा जाये इसके लिए दुनिया भर में सरकारों द्वारा मज़दूरों के बचे-खुचे सारे अधिकार ख़त्म किये जा रहे हैं। दुनिया भर में तमाम दक्षिणपन्थी, फ़ासीवादी सत्ताएँ ऐसे ही कड़े क़दम ले रही हैं। भारत में भी मोदी सरकार पूरी नंगई के साथ अपनी मज़दूर विरोधी और पूँजीपरस्त नीतियों को लागू करने में लगी हुई है। कोविड-19 महामारी की वजह से देश की अर्थव्यवस्था का जो नुक़सान हुआ है, उसका हर्जाना यह सरकार मज़दूर वर्ग से वसूलेगी। हालाँकि भारत की अर्थव्यवस्था पिछले काफ़ी समय से ही लगातार गिरती हुई नज़र आ रही थी, जिसे कोरोना ने बस एक धक्का देने का काम किया है।

अपने पहले कार्यकाल से ही लगातार मज़दूर विरोधी नीतियाँ लागू करने वाली मोदी सरकार कोरोना के संकट के नाम पर मज़दूरों पर अब एक और हमला करने की तैयारी में है। तमाम श्रम क़ानूनों को कमज़ोर करने के बाद अब यह सरकार मज़दूरों के काम के बुनियादी अधिकार पर भी हमला करने जा रही है। आज से क़रीब 150 साल पहले शिकागो के मज़दूरों ने काम के घण्टे 8 करने की लड़ाई शुरू की थी और हज़ारों क़ुर्बानियों के बाद पूरी दुनिया में यह लागू हुआ था, आज फ़ासीवादी मोदी सरकार उसे बढ़ाकर 12 घण्टे करने जा रही है।

सेक्शन 51, फ़ैक्ट्री एक्ट, 1948 जो कि यह कहता है "किसी भी युवा श्रमिक को फ़ैक्ट्री के अन्दर हफ़्ते में 48 घण्टे से अधिक काम नहीं करना है" (यानी 1 हफ़्ते में 6 दिन और हर कार्यदिवस में 8 घण्टे का काम) उस क़ानून को संशोधित कर मोदी सरकार काम के घण्टे को 8 से बढ़ाकर 12 करने जा रही है। ग़ौरतलब है कि फ़ैक्ट्री एक्ट में 4 घण्टे अधिक ओवरटाइम करने का भी प्रावधान है, लेकिन साथ-साथ इस क़ानून के अनुसार एक श्रमिक एक फ़ैक्ट्री के अंदर 3 महीने में 120 घण्टे से अधिक ओवरटाइम नहीं कर सकता और ओवरटाइम करने पर मज़दूर को दोगुनी दर से भुगतान किये जाने का प्रावधान है। हालाँकि भारत की अधिकतम फ़ैक्ट्रियों में यह क़ानून लागू ही नहीं होता है और मज़दूरों को सिंगल रेट से ही भुगतान किया जाता है।

मुनाफ़े की गिरती दर को बचाने के लिए यह फ़ासीवादी सरकार मज़दूरों का ख़ून चूसने के हर सम्भव प्रयास कर रही है। अब मालिकान मज़दूरों की छँटनी भी आसानी से और क़ानूनी रूप से कर पायेंगे। एक अनुमान के अनुसार काम के घण्टे 12 करने की वजह से क़रीब 33 फ़ीसदी मज़दूरों का काम छूट जायेगा और वे बेरोज़गारों की भीड़ में शामिल हो जायेंगे। ज़ाहिर है सरकार के पास इन बेरोज़गार मज़दूरों के लिए कोई योजना नहीं है।

लॉकडाउन के दौरान ही श्रम मामलों पर स्थायी संसदीय समिति ने सरकार से कहा कि कोरोना के कारण बन्द हुए कारख़ानों के मज़दूरों को वेतन देने के लिए मालिकों को नहीं कहा जाना चाहिए। उनसे ऐसा करने के लिए कहना मालिकों के साथ "अन्याय" होगा। समिति ने औद्योगिक सम्बन्ध कोड 2019 पर अपनी रिपोर्ट में कहा कि अगर कच्चा माल नहीं मिलने या मशीन ख़राब होने जैसे कारणों से कारख़ाने में काम बन्द होता है तब तो मज़दूर को उसकी मज़दूरी मिलनी चाहिए लेकिन अगर किसी प्राकृतिक आपदा के कारण काम बन्द होता है, तब मज़दूरी देने की कोई बाध्यता नहीं होनी चाहिए। समिति ने कहा है कि बाढ़, चक्रवात, भूकम्प आदि के कारण जब लम्बे समय तक कारख़ाने बन्द होते हैं तो इसमें मालिक की कोई ग़लती नहीं होती। समिति के मुताबिक़ कोरोना महामारी भी ऐसी ही प्राकृतिक विपदा है इसलिए इसके कारण बन्द हुए कारख़ानों के मज़दूरों को वेतन देना मालिकों की मजबूरी नहीं होनी चाहिए। समिति ने अपनी रिपोर्ट में यह कहीं नहीं कहा कि मज़दूरी नहीं मिलने से मज़दूरों और उनके परिवारों पर जो विपदा आयेगी उसका कौन ज़िम्मेदार होगा और उसकी भरपाई कैसे होगी! संसदीय समिति की चिन्ताओं में करोड़ों मज़दूर कहीं नहीं हैं। सांसद महोदय फ़ैक्ट्री मालिकों की चिन्ता में दुबले हुए जा रहे हैं। इस समिति में वामपन्थी पार्टियों के भी दो सांसद थे जिन्होंने काग़ज़ी आपत्ति दर्ज कराकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर ली। ठीक वैसे ही जैसे, पिछले तीन दशकों से अन्धाधुन्ध लागू हो रही उदारीकरण-निजीकरण की विनाशकारी नीतियों पर वे संसद में बैठे-बैठे "आपत्ति और निन्दा-भर्त्सना" करते रहे हैं।

संसदीय समिति ने इसी रिपोर्ट में यह ख़तरनाक सिफ़ारिश भी की है कि ले-ऑफ़, छँटनी और कम्पनी बन्द करने के लिए जो विशेष प्रावधान अभी ऐसी हर औद्योगिक इकाई पर लागू होते हैं जिसमें 100 या उससे अधिक मज़दूर काम करते हैं, उनकी सीमा बढ़ाकर 300 मज़दूर कर दी जाये। यानी जिस कारख़ाने में 299 मज़दूर काम करते हों, वह बिना किसी मुश्किल के ले-ऑफ़, छँटनी या कम्पनी बन्द करने की कार्रवाई कर सकेगा। समिति ने कहा कि राजस्थान जैसी कुछ राज्य सरकारें तो पहले ही ऐसा क़ानून लागू कर चुकी हैं। ग़ौरतलब है कि राजस्थान में वसुन्धरा राजे की भाजपा सरकार ने सत्ता में आते ही सबसे पहले ऐसा क़ानून पारित किया था और तभी से मोदी सरकार उसे पूरे देश में लागू करवाने की कोशिश में लगी है। समिति ने सिफ़ारिश की है कि कर्मचारियों की सीमा बढ़ाने की बात औद्योगिक सम्बन्ध कोड में ही शामिल कर लेनी चाहिए।

इस समिति ने यह सिफ़ारिश भी की है कि सरकारी बन्दिशों के बिना बड़ी कम्पनियों को यह अनुमति दी जानी चाहिए कि वे मज़दूरों को अपनी मर्ज़ी से रख सकें और उनकी छँटनी भी कर सकें।

बीजू जनता दल के सांसद भर्तृहरि महताब के नेतृत्व में गठित इस स्थायी समिति ने यह भी अनुशंसा की कि किसी भी क्षेत्र में हड़ताल पर जाने से 14 दिन पहले मज़दूरों को सरकार को सूचित करना होगा। हड़ताल के अधिकार को ख़त्म करके, बेरोकटोक छँटनी-तालाबन्दी करके मुनाफ़े की गिरती दर से पैदा अपने संकट की पूरी भरपाई पूँजीपति वर्ग और उनकी सरकारें मज़दूर वर्ग से कराना चाहते हैं।

कोरोना महामारी का हवाला देकर इस सरकार ने लगातार श्रम क़ानूनों को ढीला करने का काम किया है, ताकि पूँजीपति वर्ग मज़दूरों की श्रम शक्ति को और बुरे तरीक़े से निचोड़ सके। इस महामारी के दौरान मज़दूरों के ऊपर राशन, दवा-इलाज से लेकर कमरे के किराये का जो भयंकर बोझ टूट पड़ा है, मोदी सरकार को इसकी कोई चिन्ता नहीं है। इसके उलट पूँजीपतियों के मुनाफ़े की हवस को पूरा करने के लिए सरकार मज़दूरों की बड़ी आबादी की छँटनी करने में ज़रा भी चूक नहीं कर रही है। इस पूरी गिरती अर्थव्यवस्था का बोझ मज़दूरों के कन्धों पर आ पड़ा है।

मोदी सरकार सत्तासीन होने के बाद से ही लगातार मज़दूर विरोधी नीतियाँ बना और लागू कर रही है और इस महामारी की भयावह परिस्थिति में खुलेआम मेहनतकशों के हक़ों को छीन रही है जब उसे मालूम है कि मज़दूर इसका प्रभावी विरोध भी नहीं कर सकते। कोरोना वायरस की वजह से अर्थव्यवस्था को जो धक्का लगा है, उससे निपटने का पूरा बोझ मज़दूर वर्ग की पीठ पर लाद दिया गया है । यह तय है कि जब भी लॉकडाउन पूरी तरह खुलेगा तब मज़दूरों को और भी विकट परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा और क़दम-क़दम पर लड़ने के लिए तैयार रहना होगा।

– बिगुल संवाददाता

सेठों को मज़दूर की लूट की छूट देने में सारी पार्टियाँ एक हैं!

कोरोना संकट ने एक बार फिर यह उजागर कर दिया कि इस पूँजीवादी व्यवस्था का असली चरित्र क्या है। सरकार ने एक ओर जहाँ आनन-फ़ानन में बिना किसी तैयारी के लॉकडाउन करके करोड़ो मज़दूरों को अपने हाल मरने के लिए छोड़ दिया, तो वहीं अब 'अर्थव्यवस्था बचाने' के नाम पर मज़दूरों की सुरक्षा और पहले से जर्जर श्रम क़ानूनों में अहम बदलाव कर उन्हें और कमज़ोर रही है।

8 मई को पूँजीपति-संगठनों के 12 प्रतिनिधियों ने सरकार से कहा कि कम से कम अगले 2 से 3 साल के लिए श्रम क़ानूनों को ख़ारिज कर दिया जाये ताकि 'उद्योग संकट से बाहर आ सके'। केन्द्रीय श्रम मंत्री सन्तोष गंगवार ने उन्हें आश्वासन दिया कि वे पूँजीपतियों से पूरी 'हमदर्दी रखते हैं' और उनका ख़याल रखेंगे।

इससे एक दिन पहले ही उत्तर प्रदेश की योगी सरकार ने 7 मई को क़ानून पास कर राज्य के उद्योगों में श्रम क़ानूनों से तीन साल तक के लिए छूट दे दी थी। इसमें काम के घण्टे, ओवर-टाइम मेहनताना, यूनियन आदि से जुड़े प्रावधान शामिल हैं। हालाँकि काम के घण्टे 8 से 12 करने के बदलाव को मई में ही उच्च न्यायालय ने ख़ारिज कर दिया लेकिन अगस्त में कैबिनेट ने सरकार को यह हक़ दे दिया कि वह इस आदेश में कई अहम बदलाव कर सकती है।

कांग्रेस शासित राजस्थान व पंजाब सरकारें भी इसमें पीछे नहीं रही हैं। यहाँ भी सरकार ने काम के घण्टे 8 से 12 बढ़ाने का फ़ैसला लिया है। जब अपने मालिकों के लिए मज़दूर के शोषण को बढ़ाने की बात आती है तब सारी पार्टियाँ एक हो जाती हैं। मध्य प्रदेश सरकार ने भी काम के घण्टों को बढ़ाने के साथ श्रम मंत्रालय द्वारा फ़ैक्टरियों के निरीक्षण से छूट व मनमाने ढंग से ठेके पर किसी भी रेट पर मज़दूरों को रखने व निकालने की खुली छूट दी है। बता दें कि कुछ राज्यों में कार्य-काल बढ़ने के साथ ओवर-टाइम के रेट से मेहनताने का प्रावधान है तो वहीं कुछ राज्यों ने इससे भी निजात पा ली है।

गुजरात, हिमाचल प्रदेश, असम, कर्नाटक, गोवा, आदि अन्य राज्यों ने भी ऐसे ही बदलाव किये हैं जिन्हें बेशर्मी के साथ "सुधार" का नाम दिया जा रहा है। इन सारे बदलावों को लेकर अभी कुछ अस्पष्टता बनी हुई है और प्रक्रिया अभी जारी ही है। बहुत सी बातें सरकारें जानबूझकर साफ़-साफ़ नहीं बता रही हैं। लेकिन केन्द्र की मोदी सरकार ने साफ़ कर दिया है कि वह पूँजीपतियों के हित में हर मुमकिन बदलाव करेगी।

कुल मिलाकर ये बदलाव हमेशा की तरह संकट का बोझ मेहनत-मज़दूर आबादी पर डालेंगे। हालाँकि सभी को पता है श्रम क़ानून पहले भी काग़ज़ी ज़्यादा और ज़मीनी कम ही थे। मज़दूरों की क़रीब 93 प्रतिशत आबादी अनौपचारिक क्षेत्र में या फिर संगठित उद्योगों में अनौपचारिक तरीक़े से काम करती है जिन पर ये क़ानून वैसे भी लागू नहीं होते हैं। फिर भी, इस व्यवस्था के भीतर अपनी लड़ाई लड़ने के लिए मज़दूरों को जो क़ानूनी आधार मिलता था, उन्हें भी ख़त्म किया जा रहा है ताकि मज़दूर न तो ख़ुद संगठित होकर लड़ सकें और न ही कोई दूसरा उनके हक़ के लिए आवाज़ उठा सके।

– सुरेश चौहान

सिडकुल (हरिद्वार) के कारख़ानों में मज़दूरों के बीच फैलता कोरोना, काम के बिगड़े हालात

जिस तरह मोदी सरकार द्वारा बिना किसी योजना के लॉकडाउन करने के कारण सबसे ज़्यादा संकट का सामना मज़दूरों को करना पड़ा उसी तरह बिना किसी योजना के लॉकडाउन खोलने के कारण सबसे ज़्यादा मज़दूरों की ही ज़िन्दगी ख़तरे में है। देश के अन्य औद्योगिक क्षेत्रों में रहने वाली मज़दूर आबादी की ही तरह सिडकुल औद्योगिक क्षेत्र के मज़दूरों को भी मोदी सरकार द्वारा योजनाविहीन लॉकडाउन और अनलॉक की वजह से संकट का सामना करना पड़ रहा है। वो चाहे पैदल चलकर अपने गाँव लौटने की बात रही हो, पुलिसिया ज़ुल्म हो, भुखमरी हो या अब कोरोना से संक्रमित होने का जोखिम।

सिडकुल औद्योगिक क्षेत्र में काम करने वाली ज़्यादातर आबादी प्रवासी मज़दूरों की है जो यू.पी. के सीतापुर, लखीमपुर खीरी, शाहजहाँपुर, हरदोई, सहारनपुर, मुज़फ़्फ़रनगर आदि ज़िलों व बिहार के कई ज़िलों की रहने वाली है। कोरोना महामारी में मज़दूरों को कारख़ाना मालिकों और सरकार द्वारा जिस तरह मरने के लिए उनके हाल पर छोड़ दिया गया। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि शहरों की गन्दी बस्तियों-झुग्गियों में रहकर केवल ज़िन्दा रहने भर की मज़दूरी पाकर हड्डी गलाने वाली करोड़ो मेहनतकश आबादी के लिए पूँजीवादी व्यवस्था नर्क और गुलामी के सिवाय कुछ भी नहीं है। सरकार पूँजीपतियों की चाकरी करने के लिए ही होती है यह बात इस तथ्य से फिर साबित हुई कि 18 मई को, जबकि कोरोना संक्रमण तेज़ी से बढ़ता जा रहा था, सरकार ने मज़दूरों को मौत के मुँह में धकेलकर कारख़ाने खोलने की अनुमति दे दी।

इन कारख़ानों में कोरोना से मज़दूरों की सुरक्षा का कोई इन्तज़ाम नहीं किया गया या जो इन्तज़ाम किया गया था वह केवल दिखावा ही साबित हुआ। सिडकुल औद्योगिक क्षेत्र में कारख़ाने खुलने के बाद कोरोना संक्रमण की वजह से मज़दूर बस्तियों में सील होने वाली गलियों की संख्या लगातार बढ़ती रही है। टेस्टिंग न होने की वजह से मई-जून तक मज़दूरों के संक्रमित होने की छिट-फुट ख़बरें सामने आ रही थीं। लेकिन जब 17 जुलाई को हिन्दुस्तान यूनिलीवर लिमिटेड में कोरोना टेस्टिंग करायी गयी तो पहले 31 फिर 18 जुलाई को 22 मज़दूर संक्रमित पाये गये। इसके बाद प्लाण्ट के सभी मज़दूरों का टेस्ट कराया गया जिसमें 288 मज़दूर संक्रमित पाये गये। इसकी वजह से मज़दूर बस्तियों की लगभग 4000 आबादी के क्षेत्र को सील कर दिया गया।

हालात इतने भयानक होने के बावजूद सिडकुल के तमाम कारख़ानों में सोशल डिस्टेन्सिंग की धज्जियाँ उड़ाकर मज़दूरों को मौत के मुँह में धकेलकर 100 प्रतिशत कार्यबल के साथ सामान्य दिनों में उत्पादन होने वाले स्पीड से ही उत्पादन जारी रहा। जिन कारख़ानों में कन्वेयर चलते हैं वहाँ स्पीड से सोशल डिस्टेन्सिंग का मामला जुड़ा हुआ है। क्योंकि ज़्यादा स्पीड होने पर मज़दूर एक दूसरे को धक्का देते-खाते ही अपना काम कर पाते हैं। इसका उदाहरण 'नापिनो' में देखा जा सकता है जो हीरो के लिए हारनेस और इण्डिकेटर बनाती है। इसी तरह सिडकुल हरिद्वार की एक और फ़ैक्ट्री आईटीसी में शिफ़्ट इंचार्ज के संक्रमित होने के बाद भी न तो प्लाण्ट को सेनेटाइज़ किया गया और न ही मज़दूरों को संक्रमण से बचाने के लिए कोई व्यवस्था की गयी। आईटीसी के मज़दूरों ने प्लाण्ट को सेनिटाइज़ न करने पर एक शिफ़्ट का कार्य बहिष्कार भी किया लेकिन आईटीसी प्रबन्धन सेनिटाइज़ न करने की ज़िद पर अड़ा रहा। अंततः मज़दूरों को उसी हालात में काम करने को विवश होना पड़ा। अब तक हरिद्वार स्थित सिडकुल औद्योगिक क्षेत्र की हिन्दुस्तान यूनिलीवर लिमिटेड, आईटीसी के अलावा ब्रिटानिया, केकेजी, महिन्द्रा, एंकर, जेबीएल, एकम्स, बन्दना सहित दर्जनों कारख़ानों में मज़दूर संक्रमित हो चुके हैं।

उत्तराखण्ड सरकार द्वारा अनलॉक 3 के तहत जारी एसओपी में कहा गया है कि कम संख्या में मज़दूरों के संक्रमित होने पर कारख़ाने नहीं बन्द किये जायेंगे और अधिक संख्या में संक्रमित होने पर अधिकतम 2 दिन के लिए ही कारख़ाने बन्द होंगे। इससे समझा जा सकता है कि उत्तराखण्ड सरकार पूरी तरह से पूँजीपतियों के साथ है और मज़दूरों की बलि चढ़ाने में पूँजीपतियों के साथ सरकार बराबर की भागीदार है। केन्द्र की मोदी सरकार और उत्तराखण्ड की त्रिवेंद्र सिंह रावत की सरकार उद्योगपतियों के लिए क़दम-क़दम पर सरकारी ख़ज़ाने लूट रही है, श्रम क़ानूनों को बदल रही है लेकिन बेरोज़गारी और भुखमरी की मार झेल रहे मज़दूरों के लिए कोई व्यवस्था करना तो दूर उल्टे मज़दूरों की सुरक्षा के लिए बचे- खुचे श्रम क़ानूनों को ही ख़त्म कर मज़दूरों को ग़ुलामी में धकेलने में जी जान से लगी हुई है।

जिस तरह उत्तर प्रदेश की योगी सरकार सहित अन्य राज्यों की सरकारों द्वारा श्रम क़ानूनों को 1000 दिनों के लिये निलम्बित कर दिया गया उसी तर्ज पर उत्तराखण्ड सरकार भी 11 जुलाई को "श्रम सुधारों" के नाम पर शर्म क़ानूनों को ही ख़त्म करने का प्रस्ताव केन्द्र सरकार को भेज चुकी है। वैसे आज की हालत में भी सिडकुल औद्योगिक क्षेत्र में नाममात्र के श्रम क़ानून कारख़ानों में लागू हैं। यहाँ के ज़्यादातर कारख़ानों की एक शिफ़्ट 10 से 12 घण्टे की है। कोरोना महामारी के इस दौर में बढ़ती बेरोज़गारी का फायदा उठाकर मज़दूरी घटा दी गयी है। प्रिया गोल्ड, बिस्किट बनाने वाली कम्पनी है, इसमें इस समय 11 घण्टे 30 दिन काम करने पर साढ़े आठ से नौ हजार ही मज़दूरी है। कोरोना महामारी के बाद एकम्स सहित कई दवा बनाने वाली कम्पनियाँ 12 घण्टे चलनी शुरू हो गयी हैं जबकि मज़दूरी में बहुत मामूली बढ़ोत्तरी हुई है। 12 घण्टे के स्टैंडिंग कार्य दिवस के बीच केवल 30 मिनट का खाना खाने के लिए ब्रेक मिलता है। बर्बरता-अमानवीयता-असंवेदनशीलता जैसे शब्द कारख़ानों की हालत बयान करने में छोटे साबित हो चुके हैं। मज़दूरों के भीतर फ़ैक्ट्री प्रबंधन का ख़ौफ़ इस क़दर है कि गाली या बदतमीज़ी का सामना न करना पड़े, इसलिए 30 मिनट के बाद पहले सेकेण्ड तक मज़दूर अपने काम पर वापस पहुँच जाते हैं।

सिडकुल औद्योगिक क्षेत्र में कुल मज़दूर आबादी का लगभग 40 से 50 प्रतिशत स्त्री मज़दूर हैं। स्त्री मज़दूरों की मज़दूरी पहले से ही कम थी लेकिन कोरोना महामारी के इस दौर में स्त्री मज़दूरों की मज़दूरी में और कटौती की गयी है। यहाँ के कई कारख़ानों में स्त्री मज़दूरों की मज़दूरी 10 घण्टे, 30 ड्यूटी के पाँच से छह हज़ार है। इस तरह से जहाँ एक तरफ़ मेहनतकश आबादी कोरोना से जूझ रही वहीं दूसरी तरफ़ सरकार और पूँजीपति मिलकर मज़दूरों को गुलामी के नर्क में धकेलने में लगे हुए हैं। इस स्थिति को बदलने के लिए मज़दूरों को अपनी एकजूटता बनानी पड़ेगी।

– अंगद

पटना में घरेलू कामगार यूनियन का गठन

केन्द्र सरकार द्वारा लॉकडाउन हटाने के बावजूद बिहार की नीतीश सरकार ने जनता के ऊपर एक के बाद एक लॉकडाउन लगाने का ही विकल्प चुना। स्वास्थ्य व्यवस्था को दुरुस्त करने के बजाय शुरुआत से नीतीश सरकार हाथ पर हाथ धरे बैठी रही और सिर्फ़ लॉकडाउन कर अपनी ज़िम्मेदारी से पल्ला झाड़ लिया! इसी दौरान घरेलू कामगार महिलाओं की स्थिति बद से बदतर होती चली गयी। पटना के गोसाई टोला, चांई टोला, मैनपुरा, राजापुर, बिंद टोली, नेहरू नगर, दुजरा, कुर्जी एवं दीघा आदि मोहल्ले में रहने वाली सैकड़ों घरेलू कामगार महिलाओं की स्थिति यह थी कि लॉकडाउन की घोषणा होते ही अधिकतर मालिकों ने संक्रमण के डर से काम पर आने से मना कर दिया। इस अवधि में बिना काम किये पैसे का भुगतान करने की बात तो दूर, ज़्यादातर मालिकों ने पहले किये गये कामों के पैसे भी देने से मना कर दिया। ये महिलाएँ और इनके परिवार वाले दाने-दाने को मोहताज होने लगे। सरकार की तरफ़ से राशन वितरण की जो खानापूर्ति भी हो रही थी, जो सड़े हुए चावल भी बाँटे जा रहे थे वह भी इन लोगों को नसीब नहीं हुआ क्योंकि इनमें से ज़्यादातर लोगों के पास राशन कार्ड ही नहीं था। तब नौजवान भारत सभा ने आम नागरिकों एवं सम्पर्कों के बीच से सहयोग जुटाकर इन महिलाओं के बीच राशन आदि ज़रूरी सामानों का वितरण किया। इस संकट की घड़ी में नौभास द्वारा किया गया कार्य काफ़ी नहीं था एवं दूसरी बात यह कि यह ज़िम्मेदारी पूरी तरह से सरकार की थी। इसके बाद विभिन्न इलाक़ों में अलग-अलग बैठकों का दौर शुरू हुआ और महिलाएँ संगठित होने लगीं। सबसे पहले महिलाओं ने मज़दूर संघर्ष संकल्प अभियान के तहत 9 अगस्त के देशव्यापी विरोध प्रदर्शन के दिन अपनी माँगों के समर्थन में पहली बार संगठित होकर विरोध प्रदर्शन में भी भाग लिया।

उसके बाद हुई एक बड़ी बैठक में यह तय हुआ पटना ज़िला के डीएम को लिखित तौर पर ज्ञापन सौंपकर अपनी माँगे (जैसे सबके लिए पर्याप्त मात्रा में राशन एवं बेरोज़गार हो जाने के एवज़ में गुज़ारा लायक बेरोज़गारी भत्ता आदि को) सरकार तक पहुँचाया जाये। इसके लिए एक हस्ताक्षर अभियान चलाया गया जिसमें क़रीब 350 से अधिक महिलाओं ने अपने हस्ताक्षर किये। डीएम को ज्ञापन सौंपने के पश्चात उनके झूठे आश्वासन के सिवा कुछ भी हासिल नहीं हुआ। इसके बाद 6 सितम्बर को गोसाई टोला में हुई मीटिंग में पटना घरेलू कामगार यूनियन का गठन करने का फ़ैसला किया गया। यह यूनियन पटना शहर के अलग-अलग हिस्सों में रहने वाली घरेलू कामगार महिलाओं को एकजुट करेगी।

इसी बैठक में लिये गये फ़ैसले के तहत घरेलू महिला कामगारों की विभिन्न माँगों जैसे पंजीकरण, ओवरटाइम दर, बेरोज़गारी भत्ता आदि को लेकर घरेलू कामगार अधिकार मार्च का आयोजन किया गया । मार्च

पटना के गोसाई टोला मोड़ से होकर अशोक राजपथ होते हुए गांधी मैदान तक पहुँचा। इस मार्च में क़रीब 400 महिलाओं ने भागीदारी की। गाँधी मैदान पहुँच कर यह मार्च एक सभा में तब्दील हो गया ।

सभा के बाद पटना सदर के बीडीओ को पटना घरेलू कामगार यूनियन की ओर से ज्ञापन सौंपा गया जिसमें निम्नलिखित माँगें हैं।

1. लॉकडाउन में जिन लोगों के काम छूट गये, सरकार उन सभी को काम की गारण्टी करे और काम न मिलने पर बेरोज़गारी भत्ता दे।

2. मालिकों के लिए लॉकडाउन के दौरान के पूरे वेतन का भुगतान करना अनिवार्य हो।

3. लॉकडाउन में कई लोगों को राशन नहीं मिला और काम न होने की वजह से वे दाने-दाने को मोहताज हुए, इसलिए जल्द ही सरकार सभी के लिए राशन कार्ड बनवाने की व्यवस्था करे।

4. सभी घरेलू कामगारों को मज़दूर का दर्जा दिया जाये और इसके साथ ही बिहार सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मज़दूरी के दर से उन्हें भुगतान करवाना सुनिश्चित किया जाये। घरेलू कामगारों को बुनियादी अधिकार एवं सुविधाएँ (जैसे पंजीकरण, न्यूनतम वेतन, ओवरटाइम दर, चिकित्सा सुविधाएँ आदि) मुहैया कराये जायें।

5. एक घर में पूरे दिन काम करनेवाले घरेलू कामगार के काम के घण्टे तय किये जायें। साप्ताहिक छुट्टी और अन्य अवकाश दिये जायें। खाना बनाने, बर्तन धोने की मज़दूरी दर घर के सदस्यों की संख्या के हिसाब से और साफ़-सफ़ाई की मज़दूरी दर मकान के क्षेत्रफल के हिसाब से तय हो। वेतन, ओवरटाइम, बोनस, पी.एफ़., पेंशन, भत्ते आदि की व्यवस्था सुनिश्चित की जाये।

6. घरेलू कामगारों का पंजीकरण करने के लिए श्रम कार्यालय की ओर से पंजीकरण शिविर लगाये जायें और पंजीकृत घरेलू कामगारों को पहचान-पत्र दिये जायें।

7. सभी घरेलू कामगारों को काम पर रखवाने के लिए प्लेसमेंट सेल सरकार चलाये।

– वारुणी

नशे की ख़ुराक बाँट रहे पूँजीपतियों के मीडिया के मुक़ाबले जनता का वैकल्पिक मीडिया खड़ा करना होगा

– वृषाली

भारतीय मीडिया ने यूँ तो पिछले कुछ वर्षों में ज़्यादा खुले तौर पर पूँजीपतियों के दलाल के रूप में ख़ुद को स्थापित कर ही दिया है। लेकिन 2020 की कोरोना महामारी के दौर में भी जिस तरीक़े से भारतीय मीडिया ने अपना चरित्र जगज़ाहिर किया है उसके क्या ही कहने! कोविड-19 महामारी ने पूँजीवादी समाज के अमानवीय चेहरे को बेपर्द कर दिया है।

यूँ तो कोविड-19 की ख़बरें साल 2020 के शुरुआत में ही वैश्विक स्तर पर जगह बना चुकी थीं। लेकिन भारत सरकार के साथ-साथ दलाल गोदी मीडिया ने इस ख़बर के प्रति आँखें मूँद रखी थीं। 22 मार्च के एकदिवसीय जनता कर्फ़्यू के दौरान भारत में कोविड-19 के 360 मामले थे। 24 मार्च को अव्यवस्थित व अनियोजित तरीक़े से देशभर में लगाये गये लॉकडाउन ने आम जनता और ख़ास तौर पर मज़दूर आबादी को अनिश्चितता के अँधेरे में धकेल दिया। लेकिन सरकार और पूँजीपतियों की दलाल गोदी मीडिया ने प्रधानमंत्री के कहे का पालन करते हुए उन तमाम नकारात्मक ख़बरों को आमजन के बीच से ही ग़ायब कर दिया जो उनकी ज़िन्दगी से ताल्लुक़ात रखती थीं। सड़कों पर मीलों पैदल चल घर लौट रहे मज़दूरों की ख़बरें हों या कोविड के मोर्चे पर सुरक्षा किट की कमी का मुद्दा हो, गोदी मीडिया ने इन ख़बरों को अपने 'बाज़ार' में कोई जगह दी ही नहीं। कोविड-19 महामारी की रोकथाम के हर मोर्चे पर फ़ेल मोदी सरकार की आलोचना की ऐसे मीडिया से क्या ही उम्मीद की जाये जो खुलेआम जनता में भ्रम फैलाने के लिए झूठी ख़बरों के प्रचार-प्रसार में भी कोई कसर नहीं छोड़ती।

कोरोना के मामले को भी रिपोर्ट करने में तब्लीगी जमात के नाम पर साम्प्रदायिक रंग दिया गया। इस दौरान शाहीन बाग़, विपक्ष विरोधी, पाकिस्तान व चीन विरोधी, भाजपा सरकार की जय-जयकार के प्राइम टाइम कार्यक्रम लगभग हर बड़े कॉरपोरेट मीडिया की प्राथमिकता बने रहे। जब देशभर में लाखों मज़दूर पैदल ही घर जाने के लिए चल पड़े तो भी शुरू में टीवी चैनलों ने इसे कवर नहीं किया। जब बड़े पैमाने पर सोशल मीडिया में उनकी तस्वीरें छा गयीं तब जाकर टीवी पर मज़दूरों की चर्चा आयी। उसमें भी कई टीवी चैनलों ने मज़दूरों को ही दोष देना और उसे साम्प्रदायिक रंग देने की कोशिश जारी रखी।

बॉलीवुड अभिनेता सुशांत सिंह की आत्महत्या के बाद फ़िलहाल गोदी मीडिया के पास लम्बे समय तक के लिए काफ़ी मसाला है। पिछले कुछ हफ़्तों से भारतीय मीडिया इस आत्महत्या की गुत्थी 'सुलझाने' में ऐसी जी जान से लगी हुई है कि अब रोज़गार, आर्थिक संकट और कोविड-19 के मामलों में शीर्ष पर खड़े भारत के लिए इनके पास 'व्यर्थ' समय नहीं है।

गोदी मीडिया की प्राथमिकता : कुछ आँकड़ों की ज़ुबानी

यूँ तो दलाल गोदी मीडिया की क़िस्सागोई अगर शुरू की जाये तो इसका कोई अन्त नहीं होगा, फिर भी चन्द आँकड़ों से देखते हैं कि गोदी मीडिया ने महामारी के दौरान क्या गर्द मचायी है।

● क्रूरदर्शन (सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म) द्वारा जुटाये गये आँकड़ों के मुताबिक़ 24 से 28 अगस्त के एक हफ़्ते के बीच गोदी मीडिया के लिए प्रमुख मुद्दे ये रहे :-

बॉलीवुड : 18 बहसें, विपक्ष-विरोधी : 7 बहसें, धर्म-आधारित : 3 बहसें, पाकिस्तान विरोधी : 3 बहसें, दिल्ली हिंसा : 2 बहसें, चीन-विरोधी : 1 बहस, एनईईटी, जेईई परीक्षा सम्बन्धी : 1 बहस।

● चन्द शीर्ष वफ़ादार (पूँजीपतियों के प्रति) मीडिया घरानों द्वारा आयोजित

बहसें :-

15 जून से 15 अगस्त के दो महीनों के बीच रिपब्लिक भारत, आज तक, न्यूज़ 18, ज़ी न्यूज़ व न्यूज़ नेशन ने कुल 387 बहस आयोजित कीं जिनमें से केवल 1 बहस कोरोना महामारी के सम्बन्ध में थी।

● 31 मार्च से 1 मई के बीच रिपब्लिक भारत पर सबसे वफ़ादार अर्नब गोस्वामी के डिबेट शो (पूछता है भारत) की कुल 60 बहसों में तब्लीगी जमात : 18, शाहीन बाग़ : 4, विपक्ष विरोधी : 13, मोदी की जय-जयकार : 5, पालघर मॉबलिंचिंग : 8 (फ़ेक न्यूज़), बांद्रा प्रवासी मज़दूर : 2 (साम्प्रदायिक रंग), बाबा रामदेव : 1

जुलाई 2020 में अर्नब गोस्वामी के भारत द्वारा पूछे गये मुख्य सवाल – राम मन्दिर : 5, सुशांत सिंह आत्महत्या मामला : 5, विकास दूबे एनकाउण्टर : 5, कश्मीर : 3, चीन : 3, राजस्थान सरकार: 2, पाकिस्तान : 1, धर्म-आधारित : 1, पालघर मॉबलिंचिंग : 1

● 12 मार्च से 31 जुलाई के बीच ज़ी न्यूज़ की 275 मुख्य बहसें – विपक्ष विरोधी : 69, धर्म आधारित : 51, चीन सम्बन्धी : 32, तब्लीगी जमात : 24, पाकिस्तान : 18, लॉकडाउन : 17, मोदी सरकार की जय-जयकार : 16, कोरोना : 10, विकास दूबे : 9, सुशांत सिंह : 5, कश्मीर : 4, शराब की बिक्री : 3, कनिका कपूर : 3, प्रवासी मज़दूर : 3, उत्तर प्रदेश में जुर्म : 2, अमिताभ बच्चन : 2, डॉक्टरों पर हमले : 2, बिहार/असम/दिल्ली बाढ़ : 2, कोटा में फँसे छात्र : 1, पिज़्ज़ा डिलीवरी : 1, निर्भया : 1

● न्यूज़ 18 के अमीश देवगन द्वारा 'आर-पार' जुलाई के मुख्य मुद्दे - विपक्ष विरोधी : 5, राजस्थान सरकार : 5, राम मन्दिर : 4, चीन : 2, विकास दूबे : 2, धर्म-आधारित : 2, सुशांत सिंह आत्महत्या : 1, राफेल : 1, कश्मीर : 1

इनके अलावा टीवी 9 भारतवर्ष ने तो भीष्म प्रतिज्ञा ले रखी है कि साम्प्रदायिक मुद्दों और फ़ासीवादी प्रचार-प्रसार के अलावा कोई ख़बर ही नहीं दिखानी है! लव जिहाद, कोरोना जिहाद के बाद बड़े परिश्रम से इन्होंने 'यूपीएससी जिहाद' का कीड़ा खोज निकाला था, हालाँकि इस बार इनके मन्सूबों पर पानी फेर दिया गया है।

आज भारत में 48 लाख से ज़्यादा कोरोना के मामले व 79,000 से ज़्यादा मौतें हो चुकी हैं। यही नहीं पहले से ही डूब रही अर्थव्यवस्था को महामारी ने और गम्भीर बना दिया है। आज मोदी सरकार धड़ल्ले से सरकारी नौकरियों को ख़त्म कर रही है व निजीकरण को बढ़ावा दे रही है। बेरोज़गारी चरम पर है और मज़दूरों-मेहनतकशों के लिए दो वक़्त की रोटी जुटाना भारी पड़ रहा है। लेकिन भारतीय मीडिया के पास इन मुद्दों के लिए अपने 'प्रायोजित' प्राइम टाइम में वक़्त और जगह दोनों न के बराबर हैं।

भारतीय मीडिया से हम निष्पक्ष पत्रकारिता की कोई उम्मीद नहीं कर सकते। हिटलर के प्रचार मंत्री जोसेफ़ गोएबल्स ने कहा था कि मीडिया वह वाद्ययन्त्र है जिसे सरकार बजाती है। सरकार किसकी? पूँजीपतियों की! ज़ाहिरा तौर पर मीडिया भी पूँजीपति वर्ग के भाड़े का टट्टू और कलमघसीट है! भारत के तमाम बड़े मीडिया घरानों के शेयर बड़े पूँजीपतियों के हाथ में हैं जो किसी न किसी चुनावबाज़ पार्टी से सीधा ताल्लुक़ात रखते हैं। मीडिया ओनरशिप मॉनिटर द्वारा तैयार की गयी एक रिपोर्ट भारतीय मीडिया के चरित्र को बख़ूबी उजागर करती है। इस रिपोर्ट के अनुसार 2017 तक टेलीविज़न की 183 मिलियन (64 %) घरों तक पहुँच बन चुकी है।

चन्द प्रमुख न्यूज़ चैनलों के मालिकाने पर एक नज़र

● रिपब्लिक टीवी के अधिकतम शेयर ख़ुद अर्नब गोस्वामी व उनकी पत्नी के पास हैं। रिपब्लिक के सह-संस्थापक राजीव चन्द्रशेखर भाजपा सदस्य हैं व फ़िलहाल राज्य सभा में पदस्थ हैं।

● ज़ी न्यूज़ का स्वामित्व एस्सेल ग्रुप के सुभाष चन्द्रा के पास है। सुभाष चन्द्रा 2014 में भाजपा के सहयोग से हिसार, हरियाणा से राज्यसभा सांसद चुने गये थे। ज़ी न्यूज़ ने ही नोटबन्दी के बाद 2000 के नोट में 'चिप' डाले जाने की धमाकेदार ख़बर चलायी थी।

● नेटवर्क 18 के स्वामी और प्रधानमंत्री के क़रीबी मुकेश अम्बानी 16 न्यूज़ चैनलों के मालिक हैं।

● न्यूज़ 24 का स्वामित्व अनुराधा प्रसाद के पास है जो काँग्रेस के राज्यसभा सदस्य राजीव शुक्ला की पत्नी हैं व भाजपा के केन्द्रीय सूचना एवं प्रचार मंत्री रविशंकर प्रसाद की बहन हैं।

● आजतक के ज़्यादा शेयर अरुण पूरी व कुमा मंगलम बिड़ला के बीच बँटे हुए हैं।

क्षेत्रीय न्यूज़ चैनलों में राजनीतिक रुझान और खुले तौर पर सामने आता है। मसलन ओडिसा टीवी का स्वामित्व पांडा परिवार के हाथों में है। बैजयंत जय पांडा भाजपा के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष और प्रवक्ता हैं। वहीं असम के न्यूज़ लाइव की स्वामी रिंकी बहुजन शर्मा असम के भाजपा सरकार के कैबिनेट मंत्री की पत्नी हैं।

प्रिण्ट मीडिया की बात करें तो चार नाम प्रमुख हैं। देश भर में कुल पाठकों में चार मुख्य अखबार - दैनिक जागरण, हिन्दुस्तान, अमर उजाला व दैनिक भास्कर की 76.45 % हिस्सेदारी है। दैनिक जागरण के सम्पादकीय निदेशक महेन्द्र मोहन गुप्ता समाजवादी पार्टी की ओर से पूर्व राज्यसभा सदस्य रह चुके हैं। जागरण प्रकाशन का 60.63 % हिस्सा गुप्ता परिवार के अधीनस्थ है। देश में दूसरे सबसे ज़्यादा लोकप्रिय अख़बार हिन्दुस्तान का स्वामित्व शोभना भारतीय के पास है, जो उद्योगपति श्याम सुन्दर भारतीय की पत्नी व के.के. बिरला की पुत्री हैं।

मीडिया पूँजीवादी समाज में मालिकों के शासन के वर्चस्व को बनाये रखने का एक अहम साधन है। मीडिया के सहयोग से पूँजीपति वर्ग लोगों के बीच सहमति का निर्माण करता है और पूँजीपति वर्ग के पक्ष में राय तैयार करने का काम करता है। हालाँकि मीडिया की कथित स्वायत्तता व निष्पक्षता का भेद खुलना शुरू हो गया है। अन्य तमाम संस्थाओं की तरह ही मीडिया की भी वर्ग पक्षधरता है – पूँजीपति वर्ग के प्रति! मीडिया पूँजीपति वर्ग के ही विचारों व संस्कृति का प्रचारक-प्रसारक होता है। हिटलर के प्रचार मंत्री गोएबल्स ने कहा था कि मीडिया को मेरे नियंत्रण में दे दो और मैं किसी भी देश को सुअरों के झुण्ड में तब्दील कर दूँगा।

जनता के वैकल्पिक मीडिया के सामने चुनौतियाँ

कॉरपोरेट मीडिया के विकल्प के तौर पर आज बेशक सोशल मीडिया (जैसे – फ़ेसबुक, व्हाट्सऐप, ट्विटर इत्यादि) के संस्तरों पर कई मीडिया चैनलों ने अपनी जगह बनायी है। इनमें से कई मीडिया चैनल जनता के आर्थिक सहयोग से ही चल रहे हैं। लेकिन सोशल मीडिया की अपनी कुछ सीमाएँ भी हैं। सबसे बड़ी बात, सोशल मीडिया की पहुँच आन्तरिक संस्तरों तक नहीं है। दूसरे, सोशल मीडिया भी पूँजीवादी समाज के ढाँचे में ही आता है। ऐसे में सोशल मीडिया पर नियंत्रण रखना सत्ताधारी वर्ग के लिए कोई बड़ी बात नहीं। हाल फ़िलहाल में ही भारत की फ़ेसबुक अधिकारी अँखि दास के भाजपा से जुड़े तार चर्चा में हैं।

ज़ाहिरा तौर पर आज नये सिरे से देश स्तर पर जन मीडिया को खड़ा करने की ज़रूरत है। पूँजीपतियों के भाड़े के टट्टुओं के ख़िलाफ़ जनता का क्रान्तिकारी वैकल्पिक मीडिया खड़ा करना आज मज़दूर वर्ग के आन्दोलन के लिए एक बड़ी चुनौती है। आज क्रान्तिकारी साहित्य के अलावा, क्रान्तिकारी अख़बार, पत्र-पत्रिकाएँ, जन-नाट्य व गायन टोलियों की पहुँच देश के हर कोने में पहुँचानी होगी। इस प्रोजेक्ट में अवैतनिक कार्यकर्ताओं, बुद्धिजीवियों, संस्कृतिकर्मियों इत्यादि की अहम भूमिका होगी।

आरएसएस और भाजपा के निर्माणाधीन "हिन्दू राष्ट्र" में मज़दूरों की क्या जगह है?

(पेज 1 से आगे)

(जीडीपी) में 2020 के वित्तीय वर्ष की पहली तिमाही, यानी अप्रैल-जून में 23.9 फ़ीसदी की गिरावट आयी। यानी 2019 के वित्तीय वर्ष की पहली तिमाही के मुक़ाबले 2020 के वित्तीय वर्ष की पहली तिमाही में सकल घरेलू उत्पाद में 23.9 प्रतिशत की कमी आयी। लेकिन अगर इससे ठीक पहले की तिमाही से तुलना करें तो सकल घरेलू उत्पाद 29.5 प्रतिशत कम हो गया। **सकल घरेलू उत्पाद में कमी का हम मज़दूरों के लिए क्या मतलब है**?

सकल घरेलू उत्पाद का मतलब होता है, किसी निश्चित समय में किसी देश में सभी वस्तुओं और सेवाओं का कुल मूल्य जिसे कि मुद्रा में मापा जाता है, यानी हमारे यहाँ रुपये में। पिछले वर्ष की पहली तिमाही (अप्रैल-जून) में मुद्रा के मूल्य के आधार पर इस वर्ष की पहली तिमाही के सकल घरेलू उत्पाद को मापा जाये तो सही आँकड़ा पता चलता है, जिसके अनुसार, हमारे देश में अप्रैल से जून 2020 की तिमाही में जीडीपी 23.9 प्रतिशत कम हो गया। यानी वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन में 23.9 प्रतिशत की कमी हो गयी। याद रहे, कुल सेवाओं में वित्तीय व बैंकिंग सेवाएँ भी शामिल हैं, जोकि इस पूरे संकट के दौरान बढ़ी हैं क्योंकि उत्पादन में लाभप्रद निवेश न हो पाने पर पूँजीपति वर्ग अपनी पूँजी के बढ़े हिस्से को सट्टेबाज़ी और वित्तीय हेरफेर में लगाता है। आम तौर पर, जब भी बैंकिंग, स्टॉक मार्केट में अधिक उछाल दिखता है, तो अक्सर इसका मतलब यह होता है कि वास्तविक उत्पादक अर्थव्यवस्था संकट में है। अगर हम बैंकिंग व वित्तीय क्षेत्र की सेवाओं को निकाल दें, तो जीडीपी में कहीं ज़्यादा भयंकर गिरावट आयी है। आइए, कुछ सेक्टरों पर निगाह डालते हैं।

निर्माण उद्योग में 50 प्रतिशत की गिरावट आयी है। मैन्युफ़ैक्चरिंग यानी मोटे तौर पर औद्योगिक उत्पादन में 39 प्रतिशत की गिरावट आयी है। खनन उद्योग में 40 प्रतिशत, टेक्सटाइल में 30 प्रतिशत और ऑटोमोबाइल उद्योग में 19 प्रतिशत की गिरावट आयी है। नतीजतन, कुल निवेश में 47 प्रतिशत की कमी आयी है। मज़दूरों के लिए इसका मतलब क्या है? मज़दूरों के लिए इसका सीधा मतलब है कि उन पर बड़े पैमाने पर छँटनी, तालाबन्दी की मार पड़ी है। यही वजह है कि पूरे देश के सभी उपक्रमों में दी जाने वाली कुल मज़दूरी यानी 'वेज बिल' में क़रीब 10 प्रतिशत की कमी आयी है। इस औसत से पूरी तस्वीर सामने नहीं आती है क्योंकि वित्तीय व बैंकिंग क्षेत्र का वेज बिल भी इसमें शामिल है, जो ऐसा परजीवी सेक्टर है, जो कि संकट के दौर में भी फल-फूल सकता है। लेकिन जब हम कुछ मुख्य उत्पादक सेक्टरों पर नज़र डालते हैं तो स्थिति साफ़ हो जाती है।

कपड़ा उद्योग में मज़दूरी पर होने वाला ख़र्च 29 प्रतिशत कम हो गया, चमड़ा उद्योग में 22 प्रतिशत, ऑटोमोबाइल उद्योग में 19 प्रतिशत, पर्यटन उद्योग में 30 प्रतिशत, होटल उद्योग में 21 प्रतिशत की कमी आयी है। **यह भयंकर कमी है और इसका नतीजा हमें करोड़ों नौकरियों के जाने के रूप में देखने को मिला है। न केवल 12 करोड़ आम मेहनतकश लोग अपनी रोज़ी-रोटी से हाथ धो बैठे बल्कि जो आबादी नौकरी खोने की त्रासदी से बच गयी, उसे अब पहले से भी कम मज़दूरी पर 12-12 घण्टे काम करना पड़ रहा है। यानी मज़दूरों के शोषण की दर में निरपेक्ष रूप से बढ़ोत्तरी की गयी है: काम के घण्टों को बढ़ाकर और मज़दूरी को घटाकर। अपनी ही मुनाफ़े की हवस से पैदा किये गये हर संकट की क़ीमत इसी प्रकार पूँजीपति वर्ग मज़दूर वर्ग से वसूलता है। आपको क्या लगता है कि ग़ुलामों की तरह खटाये जा रहे इन मज़दूरों की बहुसंख्या कौन है? इस आबादी का भी 85 फ़ीसदी हिन्दू मज़दूर ही हैं।**

जब देश के मज़दूरों से पूँजीपति वर्ग अपने द्वारा ही पैदा किये गये संकट की क़ीमत वसूल कर रहा है और उन्हें लूट और दमन की चक्की में पीस रहा है, उसी समय बड़े इजारेदार पूँजीपति वर्ग की नुमाइन्दगी करने वाली साम्प्रदायिक फ़ासीवादी मोदी-शाह सरकार ने देश के पूँजीपतियों, विशेष तौर पर, अम्बानी, अडानी, टाटा आदि को टैक्सों में छूट के रूप में 1.45 लाख करोड़ रुपये की सौग़ात दे दी! यह धन कहाँ से आया था? इस देश के मज़दूरों, मेहनतकशों, निम्न मध्यवर्ग की गाढ़ी कमाई से जो कि अप्रत्यक्ष कर के रूप में देश के सरकारी ख़ज़ाने की तिजोरियाँ भरते हैं। अप्रत्यक्ष कर देने वाले ये करोड़ों लोग कौन हैं? ये मज़दूर और आम मेहनतकश हैं। इनमें हिन्दू आबादी कितनी है? 80 फ़ीसदी से ज़्यादा! **तो ये 1.45 लाख करोड़ रुपये किससे लूटकर किसे दिये गये? ये समूचे मज़दूरों-मेहनतकशों से लूट कर पूँजीपति वर्ग को दिये गये, चाहे ये मज़दूर-मेहनतकश हिन्दू हों या मुसलमान। यह है "हिन्दू राष्ट्र" में मज़दूरों की स्थिति।**

इस संकट और भुखमरी के दौर में बैंक व वित्तीय क्षेत्र के वेज बिल में 17 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है और वित्तीय दलालों की दलाली (ब्रोकरेज) में 13 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। यानी, जिस समय हम मज़दूर भुखमरी, कुपोषण, शोषण और मौत से जूझ रहे हैं, हमारे देश के वित्तीय पूँजीपति वर्ग और दलाल और अतिधनाढ्य धनपशु वर्ग हमारी क़ीमत पर रंगरलियाँ मनाने में लगा हुआ है। निश्चित तौर पर, औद्योगिक व उत्पादक क्षेत्र का मालिक वर्ग संकट के दौर में घाटा झेल रहा है। लेकिन इनमें जो बड़ा पूँजीपति वर्ग है, वह कुछ समय तक घाटा झेलता रह सकता है क्योंकि उसके पास भारी पूँजी संचय है और क्योंकि वह इस घाटे का भी अच्छा-ख़ासा बोझ हम मज़दूरों के कन्धों पर डाल देता है। छोटे और मँझोले पूँजीपति वर्ग का एक हिस्सा तबाह भी होगा, जैसा कि हमेशा ही पूँजीवादी व्यवस्था में होता है। लेकिन इसकी तुलना मज़दूरों और आम मेहनतकश आबादी की तबाही और बर्बादी से नहीं की जा सकती है।

इसी दौर में 'आपदा को अवसर' में बदलते हुए मोदी सरकार ने निजीकरण की जो आँधी चलायी है, उसकी तो देश के इतिहास में कोई मिसाल ही नहीं है। कांग्रेस की सरकार ने निजीकरण-उदारीकरण की शुरुआत की थी। लेकिन इजारेदार पूँजीपति वर्ग के सबसे प्रतिक्रियावादी हिस्से की नुमाइन्दगी करने वाली मोदी सरकार ने तो इस मामले में कांग्रेस व अन्य पूँजीवादी पार्टियों को दौड़ में इतना पीछे छोड़ दिया है, कि वे नज़र भी नहीं आ रही हैं! एयरपोर्ट, रेलवे, रेलवे स्टेशन, बीएसएनएल व मुनाफ़ा कमाने वाले अन्य सरकारी उपक्रम सभी औने-पौने दामों पर अम्बानी, अडानी को सौंपे जा रहे हैं। क्यों? क्योंकि ये इजारेदार पूँजीपति मुनाफ़ा देने वाले निवेश के लिए नये क्षेत्रों को खुलवाना चाहते हैं, यानी सार्वजनिक क्षेत्र की तमाम कम्पनियों का निजीकरण करवाना चाहते हैं, ताकि मुनाफ़े की गिरती दर के संकट से उन्हें कुछ फ़ौरी निजात मिल सके। दूसरा कारण यह है कि कुछ सरकारी उपक्रम बाज़ार में इन निजी इजारेदार पूँजीपतियों के साथ प्रतिस्पर्द्धा करते हैं, जिसे ये पूँजीपति पूरी तरह समाप्त कर देना चाहते हैं। मिसाल के तौर पर, बीएसएनएल का निजीकरण या उसको बन्द करवा देना अम्बानी की जियो कम्पनी के लिए ज़रूरी है। निश्चित तौर पर, ये पूँजीपति आपस में भी एक-दूसरे को ख़त्म करने या निगल जाने का प्रयास करते रहते हैं, और यह स्वाभाविक है क्योंकि पूँजीपति वर्ग का आपसी "भाईचारा" बाज़ार में होने वाली गलाकाटू प्रतिस्पर्द्धा से ही पैदा होता है! लेकिन मज़दूर वर्ग के ख़िलाफ़ ये सभी एकजुट होते हैं और अपनी आपसी प्रतियोगिता को हमेशा भूलने को तैयार रहते हैं।

मोदी सरकार द्वारा चलायी गयी निजीकरण की आँधी का सीधा मतलब होगा, रेलवे, एयरपोर्ट प्राधिकार, रेलवे स्टेशनों, बीएसएनएल, अन्य सरकारी उपक्रमों में बड़े पैमाने पर छँटनी। यानी आने वाले समय में बेरोज़गारी और भी ज़्यादा तेज़ी से बढ़ेगी। यह तब तक बढ़ती रहेगी जब तक मुनाफ़े की दर के संकट से विश्व पूँजीवाद और हमारे देश के पूँजीवाद को निजात नहीं मिलती और निवेश की दर में अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी नहीं होती है। इस संकट से निजात मिलने के अभी कई वर्षों तक कोई आसार नज़र नहीं आ रहे हैं। **यानी, यह तय है कि बेरोज़गारी का और भी भयंकर कहर हमारे ऊपर बरपा होने वाला है।**

अब जबकि देश में बेरोज़गारी, महँगाई, ग़रीबी, कुपोषण, भुखमरी के हालात बद से बदतर होते जा रहे हैं, तो निश्चित तौर पर देश में ग़ुस्सा और असन्तोष भी बढ़ रहा है। यही वजह है कि मोदी-शाह सरकार जनता के दमन के औज़ारों को चाक-चौबन्द करने में लगी हुई है। इसके लिए इसने बिना किसी तैयारी व योजना के लागू किये गये अपने लॉकडाउन का भी पूरा इस्तेमाल किया है। **ज़ाहिर है, ऐसी किसी भी आकस्मिक स्थिति, जैसे कि किसी महामारी का पैदा होना, का सबसे कुशल इस्तेमाल वही वर्ग करता है जो कि राजनीतिक तौर पर सबसे ज़्यादा संगठित होता है।** बताने की ज़रूरत नहीं कि आज मज़दूर वर्ग बिखरा हुआ और राजनीतिक तौर पर असंगठित है, जबकि पूँजीपति वर्ग राजनीतिक तौर पर कहीं ज़्यादा संगठित है। तो ज़ाहिरा तौर पर किसी भी आकस्मिक स्थिति के पैदा होने पर यही वर्ग 'आपदा को अवसर में बदलने' के लिए सबसे अच्छी स्थिति में होता है और आज भी है। इस पर ताज्जुब करना या इसे कोई अजूबा बताना बचकानापन है कि मोदी सरकार ने लॉकडाउन का इस्तेमाल जनता के जनवादी व नागरिक अधिकारों को कुचलने के लिए किया है।

एक तरफ़ नागरिकता संशोधन क़ानून (सी.ए.ए.) और राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर (एन.आर.सी.) की प्रक्रिया को लॉकडाउन पूर्ण रूप से समाप्त होने के बाद फिर से शुरू करने का ऐलान मोदी सरकार कर चुकी है, तो दूसरी ओर आतंकवाद निरोधक क़ानून, राजद्रोह के क़ानून आदि का दुरुपयोग करके वह उन राजनीतिक कार्यकर्ताओं, बुद्धिजीवियों, छात्रों-युवाओं और मज़दूर क्रान्तिकारियों को प्रताड़ित कर रही है, उन पर झूठे मुक़दमे डाल रही है, उन्हें जेलों में डाल रही है, जो कि सीएए-एनआरसी, निजीकरण, शिक्षा के अधिकार, रोज़गार के अधिकार आदि को लेकर उस पर सवाल उठा रहे हैं।

इसके लिए बहाना क्या पेश किया जा रहा है? संघ परिवार द्वारा प्रचार यह किया जा रहा है कि ये सारे लोग मुसलमान-परस्त हैं, पाकिस्तान-परस्त हैं, चीन-परस्त हैं, आदि! यहाँ तक कि हम मज़दूर भी अगर अपने हक़ों को लेकर आवाज़ उठाते हैं, तो हमें इस "हिन्दू राष्ट्र" का ग़द्दार करार दिया जाता है! लेकिन जिन ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं, राजनीतिक-सामाजिक कार्यकर्ताओं, बुद्धिजीवियों, वकीलों, पत्रकारों को मोदी सरकार प्रताड़ित कर रही है, उनमें भी मुसलमान से ज़्यादा हिन्दू ही हैं। व्यापक पैमाने पर ग़रीब मुसलमान नौजवानों को मोदी सरकार झूठे आरोपों के आधार पर जेलों में भर रही है, यह सच है। क्योंकि उन्हें बाक़ी हिन्दू मेहनतकश आबादी को गुमराह करने के लिए यह साबित करना है कि ये मुसलमान नौजवान राष्ट्रद्रोही हैं, आतंकवादी हैं, पाकिस्तान-परस्त हैं! क्यों? सिर्फ़ इसलिए क्योंकि वे मोदी और शाह का विरोध कर रहे हैं, क्योंकि वे भारत के नागरिक के तौर पर अपने क़ानूनी हक़ों की हिफ़ाज़त कर रहे हैं, क्योंकि वे समूचे देश की जनता के हक़ों के लिए भी आवाज़ उठा रहे हैं। साथ ही, अनेक राजनीतिक-सामाजिक कार्यकर्ताओं पर भी यही आरोप लगाये जा रहे हैं। इनमें से अधिकांश मुसलमान नहीं हैं। **यानी कि इस निर्माणाधीन "हिन्दू राष्ट्र" में राष्ट्रद्रोह की परिभाषा यह हो गयी है कि जो मोदी-शाह सरकार का, इजारेदार पूँजीपति वर्ग यानी अम्बानी, अडानी, टाटा, बिड़ला आदि का विरोध करेगा वह इस "रामराज्य" का ग़द्दार है, वह इस "हिन्दू राष्ट्र" का द्रोही है, चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान हो, सिख हो, ईसाई हो या कोई और!**

हर प्रकार के विरोध को राष्ट्रद्रोह करार दिया जा रहा है। चाहे वे कारख़ानों में संघर्षरत मज़दूर हों, बेरोज़गारी के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने वाले मज़दूर, छात्र और युवा हों, या निजीकरण के विरोध में लड़ रहे सरकारी कर्मचारी हों। विशेष तौर पर, इन सभी संघर्षों और आन्दोलनों के नेताओं की पहचान कर उन पर फ़र्ज़ी मुक़दमे डाले जा रहे हैं, उन्हें जेलों में डाला जा रहा है, हिरासत में प्रताड़ित किया जा रहा है। उन्हें "अनुशासित" किया जा रहा है ताकि वे भविष्य में मोदी-शाह सरकार, संघ परिवार और उनके आकाओं, यानी बड़े इजारेदार पूँजीपति वर्ग के विरुद्ध कुछ बोलने की जुर्रत न करें। ऐसे सभी लोगों को, जिनमें बहुसंख्या हिन्दुओं की है, पाकिस्तानपरस्त, ग़द्दार, देशद्रोही, राष्ट्रद्रोही, मीरजाफ़र आदि की संज्ञाएँ दी जा रही हैं!

(पेज 7 पर जारी)

महामारी के दौर में भी जारी हैं दलितों पर हमले और अपमान

जातीय पहचान की राजनीति को त्यागकर जाति-व्यवस्था और इसके पोषक पूँजीवाद के ख़िलाफ़ संघर्ष तेज़ करो !

विगत 19 जुलाई को उत्तरप्रदेश के आगरा जनपद में ककरपुरा नामक गाँव में दलित जाति की महिला के शव को शमशान घाट पर चिता से ही उतरवा दिया गया क्योंकि यह शमशान घाट तथाकथित ऊँची जाति वालों का था। 18 जुलाई को कर्नाटक के विजयपुरा में एक दलित व्यक्ति और उसके परिजनों को तथाकथित ऊँची जाति के लोगों की भीड़ के द्वारा बेरहमी से पीटा गया और निर्वस्त्र करके घुमाया गया। पुलिस के ही मुताबिक़ कारण यह था कि इस व्यक्ति ने कथित तौर पर "ऊँची जाति" के एक शख़्स की बाइक को छू दिया था! 14 जुलाई को मध्यप्रदेश के गुना में पुलिस के द्वारा ही क़ब्ज़ा छुड़ाने के नाम पर ग़रीब-दलित किसान दम्पत्ति के साथ बहुत ही अमानवीय बर्ताव किया गया। किसान ने ज़मीन उसी की जाति के किसी दलाल को पैसे देकर पट्टे पर ली थी। उसने मेहनत करके उसमें जो फ़सल उगायी थी उस सबको भी मटियामेट कर दिया गया। पुलिस की बर्बरता से आहत दलित किसान राजकुमार ने बीवी समेत ज़हर पी लिया। लॉकडाउन के दौरान की ही घटना है कि ओडिशा के सुन्दरगढ़ में एक 13 वर्षीय ग़रीब-आदिवासी बच्ची का थाना प्रभारी सहित कई पुलिस वालों ने 3 महीनों तक रेप किया। इस घटना पर डीजीपी ने बच्ची से सार्वजनिक माफ़ी माँगी लेकिन क्या इससे उसके शारीरिक और मानसिक घाव भर पायेंगे? एक जून को उत्तरप्रदेश के अयोध्या में एक अनुसूचित जाति के व्यक्ति को धारदार हथियारों के द्वारा काट डाला गया। 3 मई को डायन का आरोप लगाकर बिहार के मुजफ़्फ़रपुर में तीन महिलाओं समेत चार दलित लोगों को बुरी तरह से पीटा गया और मैला पीने को मजबूर किया गया। इसके अलावा पूरे कोरोनाकाल में भी क़्वारन्टीन सेण्टरों में दोयम दर्जे के व्यवहार से लेकर सफ़ाई कर्मियों के उत्पीड़न की तमाम घटनाएँ हमारे सामने आयीं।

देश में दलित उत्पीड़न की घटनाएँ और अस्मितावादी मानसिकता दोनों ही इस समय उफ़ान पर हैं। आये दिन कभी घोड़ी पर चढ़ने के कारण तो कभी मूछें रखने के कारण; कभी अन्तर्जातीय विवाह के कारण तो कभी प्रेम प्रसंग के कारण; कभी बर्तन छू लेने के कारण तो कभी मन्दिर की सीढ़ियों पर चढ़ने के कारण हत्या, मारपीट, बहिष्कार और बेइज़्ज़त करने के रूप में दलित उत्पीड़न की घटनाएँ सामने आती ही रहती हैं। अधिकतर मामलों में आर्थिक शोषण और सामाजिक उत्पीड़न ग़रीब दलित आबादी को ही झेलना पड़ता है।

उपरोक्त विवरण से साफ़ ज़ाहिर होता है कि घनघोर अमानवीय जाति-व्यवस्था आज भी क़ायम है और रोज़ दलित उत्पीड़न के नये-नये मामले सामने आ रहे हैं। तमाम सरकारें आयीं और गयीं किन्तु जातिवादी मानसिकता में कोई कमी नहीं आयी बल्कि इसे नया-नया खाद-पानी ही मिलता रहा है। जाति-व्यवस्था की पैरोकार भाजपा के शासन में तो जातिवादी मानसिकता और जातिवादी उत्पीड़न में और भी बढ़ोत्तरी हुई है। भले ही प्रधानमंत्री मोदी दलितों को मारने की बजाय उन्हें मारने के लिए लोगों का आह्वान कर लें इससे स्थिति में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ने वाला।

मार्च 2018 में आयी नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB/एनसीआरबी) की रिपोर्ट के अनुसार 2007 से 2017 के बीच के दस सालों में दलित विरोधी अपराधों में 66 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है, 2006 में जहाँ 27,070 दलित विरोधी मामले दर्ज हुए थे, वहीं 2011 में 33,719 और 2016 में इनकी संख्या बढ़कर 40,801 हो गयी। आप देख सकते हैं समाज में दलित उत्पीड़न के मामलों में किस तरह से दिन दूनी रात चौगुनी गति से वृद्धि हुई है।

देशभर में दलित विरोधी जातिगत नफ़रत व हिंसा का लम्बा इतिहास रहा है। 1989 में एससी/एसटी एक्ट के लागू होने के बावजूद भी देश में औसतन हर 15 मिनट में एक दलित उत्पीड़न का शिकार होता है; हर घण्टे दलितों के ख़िलाफ़ 5 से ज़्यादा हमले दर्ज होते हैं; हर दिन दो दलितों की हत्या कर दी जाती है; अगर दलित महिलाओं की बात की जाये तो उनकी स्थिति तो और भी भयानक है। प्रतिदिन औसतन 6 स्त्रियाँ बलात्कार का शिकार होती हैं।

समता, न्याय, भाईचारे और सौहार्द्र के बेशक कितने ही ढोल बजा लिये जायें आज बड़ी संख्या में देश के ही नागरिक न्याय, बराबरी और अवसर की समानता जैसे अपने संवैधानिक अधिकारों तक से महरूम हैं। निश्चय ही हमें तमाम तरह के जातीय भेदभाव, उत्पीड़न और शोषण का तत्काल प्रतिकार करना चाहिए। जातीय उत्पीड़न और जातिवादी मानसिकता के ख़िलाफ़ सशक्त जनवादी और नागरिक अधिकार आन्दोलन खड़ा करना चाहिए। एक ऐसा आन्दोलन जिसके दरवाज़े हर जाति के प्रगतिशील व्यक्ति के लिए खुले हों। इसके साथ ही हमें जाति-व्यवस्था के असल कारणों की भी पड़ताल करके इनके विरुद्ध आन्दोलन की सांगोपांग रूपरेखा भी तैयार करनी चाहिए। कम से कम हमारे सामने यह तो स्पष्ट होना ही चाहिए कि जातिवाद को क्या चीज़ कमज़ोर करेगी और क्या चीज़ मज़बूत।

जातीय उत्पीड़न की भयावह स्थिति के बावजूद जातिवाद विरोधी प्रगतिशील आन्दोलन खड़ा होने की बजाय चारों तरफ़ अपनी-अपनी जातीय पहचान को लेकर अस्मितावादी राजनीति ज़ोरों पर है। अस्मितावाद की नैया में सवार होकर तमाम जातीय ठेकेदार पलक झपकते ही भाजपा-कांग्रेस से लेकर तमाम क्षेत्रीय चुनावबाज़ पार्टियों की गोद में जा बैठते हैं और अपनी जाति के ही ग़रीबों के हितों के साथ सौदा करने लगते हैं। जाति-व्यवस्था विरोधी वर्गाधारित आन्दोलन खड़ा करने का कार्यभार आज देश की मेहनतकश जनता और उसके युवा बेटे-बेटियों के कन्धों पर ही टिका है। अस्मितावादी रंगे सियारों और चुनावबाज़ धन्धेबाज़ों से हमें कोई उम्मीद नहीं रखनी चाहिए।

आज अस्मितावाद (यानी ग़रीबों को उनकी जातीय पहचान और अस्मिता के आधार पर संगठित और गोलबन्द करना) तथा प्रतीकवाद (यानी मूर्ति तोड़े जाने और किसी प्रतीक के बारे में किसी के द्वारा कुछ कह देने जैसे मुद्दों को ही मुखरता से उठाना और दलित-ग़रीब आबादी के असल मुद्दों पर चुप रहना) से ग़रीबों और दलितों का कोई भला नहीं होने वाला। इस तरह

(पेज 12 पर जारी)

"हिन्दू राष्ट्र" में मज़दूरों की क्या जगह है?

(पेज 6 से आगे)

इस फ़ासिस्ट दमनचक्र को कामयाब बनाने के लिए देश में बढ़ती बदहाली और तबाही के लिए एक नक़ली शत्रु को ज़िम्मेदार ठहराया जा रहा है, यानी जो वास्तव में शत्रु है ही नहीं। देश के हिन्दू मज़दूरों और मेहनतकशों को बताया जा रहा है कि उनकी ज़िन्दगी की परेशानियों के लिए मुसलमान ज़िम्मेदार हैं, सवर्ण हिन्दू मज़दूरों, मेहनतकशों और युवाओं को बताया जा रहा है कि दलित ज़िम्मेदार हैं, हर राज्य के मज़दूरों, मेहनतकशों और छात्रों-युवाओं को बताया जा रहा है कि प्रवासी मज़दूर ज़िम्मेदार हैं, इत्यादि। **इसी दौर में, तमाम राज्यों में प्रतिक्रियावादी क्षेत्रीय पूँजीपति वर्ग राष्ट्रवाद, भाषाई कट्टरपन्थ, प्रवासी-विरोध की आँधी चलाने में लगा हुआ है। ऐसी बातें की जा रही हैं कि तमिल नौकरियाँ तमिलों के लिए, महाराष्ट्र की नौकरियाँ मराठों के लिए, पंजाब की नौकरियाँ पंजाबियों के लिए, इत्यादि। और विडम्बना यह है कि इन राज्यों के कुछ तथाकथित "मार्क्सवादी" भी राष्ट्रवाद और कट्टरता की इस लहर में बह रहे हैं।**

एक काल्पनिक या नक़ली दुश्मन पैदा करके संघ परिवार और मोदी-शाह सरकार मेहनतकश जनता को टुकड़ों-टुकड़ों में बाँट देना चाहते हैं ताकि हम कोई संगठित प्रतिरोध न कर सकें। वे इजारेदार पूँजीपति वर्ग और समूची पूँजीवादी व्यवस्था के अपराधों के लिए मुसलमानों, दलितों, प्रवासियों आदि को दोषी ठहराते हैं, ताकि असली दोषी को बचाया जा सके। यह असली दोषी है मुनाफ़ा-केन्द्रित और मानवद्रोही पूँजीवादी व्यवस्था जो आज पूरी दुनिया को लूट, शोषण, दमन, तबाही, बर्बादी, बेरोज़गारी, पर्यावरणीय विनाश, दंगों, और युद्धों के अलावा कुछ नहीं दे सकती है। यह इसलिए किया जाता है कि "हिन्दू राष्ट्र" के राजाओं के राज को क़ायम रखा जा सके। कौन हैं "हिन्दू राष्ट्र" के ये असली राजा? ये है अम्बानी, अडानी, टाटा, बिड़ला जैसे पूँजीपतियों का पूरा वर्ग। इन्हीं के दिये हुए हज़ारों करोड़ के चन्दे के बूते तो नरेन्द्र मोदी सत्ता में पहुँचा है। और इन्हीं के हितों की सेवा के लिए एक तरफ़ सबकुछ पूँजीपतियों को बेचा जा रहा है, समूचे मज़दूर वर्ग को लूटने के लिए सारी छूटें दी जा रही हैं, और वहीं दूसरी ओर इस मज़दूर वर्ग को बाँटने के लिए मुसलमानों को एक नक़ली दुश्मन के तौर पर पेश किया जा रहा है, ताकि हम असली दुश्मनों को न पहचान सकें और आपस में ही लड़ते रहें।

यानी यह "हिन्दू राष्ट्र" क्या है? यह "हिन्दू राष्ट्र" और कुछ नहीं बल्कि इजारेदार पूँजीपति वर्ग के हितों की सेवा करने वाली एक फ़ासिस्ट तानाशाही है, जिसमें हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, सवर्ण, दलित, आदिवासी, स्त्री-पुरुष सभी मज़दूरों की स्थिति यह है कि वे 12-12 घण्टे मुँह पर ताला लगाकर हाड़ गलाएँ, बेहद कम मज़दूरी में सन्तुष्ट रहें, यूनियन वग़ैरह का नाम भी न लें, और "शान्ति" बरकरार रखते हुए अपने ख़ून को सिक्कों में ढालें और इस "हिन्दू राष्ट्र" के शासकों की तिजोरियाँ भरें। "हिन्दू राष्ट्र" में मुसलमानों और हिन्दुओं और अन्य सभी मज़दूरों के दमन और शोषण में इजारेदार पूँजीपति वर्ग और उसकी नुमाइन्दगी करने वाली मोदी सरकार कोई कमी नहीं करने वाली। इसमें धर्म और जाति से परे, सभी मज़दूरों का दमन और शोषण ही होना है।

निश्चित तौर पर, मुसलमान मेहनतकश आबादी को साम्प्रदायिक उन्माद और दंगे भड़काकर साम्प्रदायिक फ़ासीवादी हिंसा का निशाना बनाया जायेगा ताकि जनता का धर्म के आधार पर ध्रुवीकरण किया जा सके। इस रूप में आम मेहनतकश मुसलमान आबादी को अतिरिक्त दमन और उत्पीड़न का सामना करना पड़ेगा। लेकिन आम मेहनतकश हिन्दू आबादी भी अगर इस मुग़ालते में है कि "हिन्दू राष्ट्र" समूचे हिन्दुओं का शासन होगा, तो वह इसकी भयंकर क़ीमत चुकायेगी। पूरी हिन्दू आबादी एक नहीं है। वह मज़दूरों, पूँजीपतियों, निम्न पूँजीपति वर्ग, धनी किसान, ग़रीब किसान, अर्द्धसर्वहारा आबादी में बँटी हुई है। **संघ परिवार और मोदी-शाह सरकार धार्मिक उन्माद फैलाकर पहले से ही सामाजिक व आर्थिक असुरक्षा और अनिश्चितता झेल रही निम्न पूँजीपति वर्ग और संगठित मज़दूर आबादी तथा लम्पट मज़दूर वर्ग के एक हिस्से में प्रतिक्रिया की लहर पैदा करते हैं, लेकिन इस प्रतिक्रिया की लहर का लाभ केवल और केवल बड़े पूँजीपति वर्ग और फ़ासिस्ट सरकार को मिलता है। आम मेहनतकश हिन्दू आबादी को हमेशा इसका नुक़सान ही होता है क्योंकि वह अपने वर्ग शत्रुओं के ख़िलाफ़ लड़ने के बजाय, अपने ही वर्ग के दूसरे धर्मों के साथियों, भाइयों, बहनों से लड़ पड़ती है।**

लुब्बेलुबाब यह कि "हिन्दू राष्ट्र" वास्तव में इजारेदार पूँजीपति वर्ग की फ़ासिस्ट तानाशाही का ही दूसरा नाम है। यह "हिन्दुओं का शासन" नहीं है क्योंकि यह मुसलमानों, हिन्दुओं, और अन्य सभी धर्मों व जातियों से आने वाले मज़दूर वर्ग के शोषण, दमन और उत्पीड़न में कोई कमी या कसर नहीं छोड़ता है। जो भी अम्बानी, अडानी, टाटा, बिड़ला के वर्ग द्वारा चल रही खुली और नंगी लूट के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाता है या उनकी नुमाइन्दगी करने वाली मोदी-शाह सरकार के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाता है, उसे तुरन्त ही "हिन्दू राष्ट्र" का शत्रु घोषित कर दिया जाता है चाहे वह हिन्दू हो, मुसलमान हो या कोई और। इसलिए हम मज़दूरों को "हिन्दू राष्ट्र" के नाम से ज़रा भी गुमराह नहीं होना चाहिए और इस बात को समझना चाहिए कि हमें मज़दूर वर्ग का संगठन खड़ा करना है ताकि सभी मज़हबों, पन्थों, जातियों के मज़दूर अपने साझा वर्ग शत्रु यानी पूँजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ मज़बूती से लड़ सकें, अपने हक़ों को हासिल कर सकें और एक मज़दूर सत्ता और समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए नयी समाजवादी क्रान्ति की ओर बढ़ सकें। नहीं तो हम अपनी क़ब्र ख़ुद ही खोद रहे होंगे। जितनी जल्दी हम इस बात को समझ जायेंगे उतना ही बेहतर होगा, क्योंकि पहले ही काफ़ी देर हो चुकी है।

कोरोना महामारी और लॉकडाउन
ज़िम्मेदार कौन है? क़ीमत कौन चुका रहा है?

दुनिया कोरोना महामारी से जूझ रही है। ये शब्द लिखे जाने तक 9 लाख 20 हज़ार से ज़्यादा मौतें हो चुकी हैं, जिनमें से क़रीब 80 हज़ार मौतें भारत में हुई हैं। दुनिया में अब तक लगभग 3 करोड़ लोग कोरोना वायरस से संक्रमित हो चुके हैं, जिनमें से 2 करोड़ 10 लाख ठीक हो गये हैं। भारत में कुल संक्रमित लोगों की संख्या अब तक 48 लाख पार कर चुकी है, जिनमें से क़रीब 38 लाख लोग ठीक हुए हैं। हालाँकि जो लोग ठीक हो रहे हैं उनमें से भी बहुतों को कई तरह की गम्भीर परेशानियाँ हो जा रही हैं।

दुनिया के अधिकांश देशों में पूर्ण या आंशिक लॉकडाउन घोषित किया गया है। आर्थिक गतिविधियाँ काफ़ी हद तक रुक गयी हैं। अमेरिका 1930 की महामन्दी के बाद सबसे गहरी आर्थिक मन्दी के सामने खड़ा है, जर्मनी द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सबसे गम्भीर आर्थिक संकट की कगार पर है, ब्रिटेन सहित दुनिया के ज़्यादातर देशों में अर्थव्यवस्था संकट में है। लेकिन सबसे ख़राब हालत भारत की है।

इस वित्तीय वर्ष की पहली तिमाही में ही देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में 23.9 प्रतिशत की गिरावट आ गयी। पहले से ही मौजूद भयंकर बेरोज़गारी की स्थिति अब और विकराल हो चुकी है। आने वाले दिनों में छँटनी और बेरोज़गारी की अभूतपूर्व मार इस देश की जनता पर पड़ने वाली है।

दुनिया भर के पूँजीवादी शासक वर्ग इस अभूतपूर्व संकट का ठीकरा कोरोना महामारी के सिर फोड़ रहे हैं, जबकि सच्चाई यह है कि पूँजीवादी दुनिया पहले ही मुनाफ़े की घटती दर के पूँजीवादी संकट के भँवर में फँसी हुई थी। निश्चित तौर पर, कोरोना महामारी ने इस संकट को और अधिक गहरा और लाइलाज बनाने में एक महत्वपूर्ण तात्कालिक भूमिका निभायी है।

कोरोना महामारी के बारे में हमारे देश की फ़ासीवादी मोदी सरकार और साथ ही दुनिया के दूसरे पूँजीवादी मुल्क़ों की सरकारें जनता को बता रही हैं कि कोरोना संक्रमण पर उनका कोई नियंत्रण नहीं था। यह उनकी ग़लती नहीं थी। यह तो पशु जगत से आया नया वायरस है और इसमें सरकारें कुछ नहीं कर सकती हैं।

क्या यह सच है? नहीं! ढाँचागत तौर पर भी तमाम नये वायरल संक्रमणों के लगातार बढ़ते जाने के लिए क़ुदरत और मेहनत की अन्धी लूट ज़िम्मेदार है। इस लूट के पीछे पूँजीपतियों का, यानी मालिकों, ठेकेदारों, व्यापारियों की मुनाफ़े की अन्धी हवस खड़ी है। इसलिए सबसे पहले तो यह समझना चाहिए कि पिछले 30 वर्षों में वायरल संक्रमणों की बारम्बारता बढ़ने के पीछे संकटग्रस्त पूँजीवाद की मानवद्रोही मुनाफ़ाखोरी और उससे संचालित विकास का वह मॉडल है, जिसके केन्द्र में इन्सान नहीं है, समाज नहीं है, बल्कि मुट्ठी भर धन्नासेठों की तिजोरियाँ भरना है।

दूसरी बात यह है कि जब भी मनुष्य प्रकृति के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है, उत्पादन करता है, सन्धान करता है तो पशु जगत व आम तौर पर प्रकृति से कुछ वायरस मनुष्यों में आते ही हैं। आज वह प्रक्रिया पूँजीपति वर्ग की नवउदारवादी नीतियों के कारण बढ़ गयी है, लेकिन ऐसा मानव समाज की शुरुआत से ही होता रहा है। जब मनुष्यों के पास उन्नत चिकित्सा विज्ञान नहीं था, तो कई वायरस संक्रमणों को महामारी बनने से रोकना सम्भव नहीं था। यूरोप में मध्य युग में प्लेग की महामारी (ब्लैक डेथ) से लेकर 1918-19 की स्पैनिश फ्लू महामारी तक, मनुष्यता ने ऐसी महामारियाँ देखी हैं, जिन्होंने लाखों नहीं बल्कि करोड़ों की संख्या में लोगों की जान ले ली। इसी प्रक्रिया में इन वायरसों को मानव शरीर ने जान लिया और उनके प्रतिरोध की प्रणाली विकसित कर ली, यानी इन वायरसों की एण्टी-बॉडी विकसित कर ली, क्योंकि मानव शरीर भी सीखता है और जब पूरी की पूरी आबादी का 70 से 80 फ़ीसदी हिस्सा किसी वायरस से संक्रमित होकर ठीक होता है, तो मानव शरीर उस वायरस के प्रति प्रतिरोधक क्षमता विकसित कर लेता है।

उन्नीसवीं सदी के बाद से मनुष्यता ने बड़े पैमाने पर अनेक वैक्सीन भी विकसित कीं, जिन्होंने कई वायरसों के प्रति मानव शरीर को इम्यून बना दिया। इक्कीसवीं सदी में विज्ञान और तकनोलॉजी इतने उन्नत हो चुके हैं कि किसी भी वायरल संक्रमण को महामारी बनने से रोका जा सकता है। लेकिन चूँकि पूँजीवादी दुनिया में विज्ञान और तकनोलॉजी भी पूँजी की सेवा में लगा दिये जाते हैं, इसलिए उनका मक़सद भी बस मुनाफ़े की दर को बढ़ाना रह जाता है, न कि मनुष्यता और समाज की बेहतरी। नतीजतन, एक ओर पूँजीवादी मुनाफ़ाखोरी से वायरल संक्रमणों की बारम्बारता बढ़ती जा रही है, वहीं इन वायरल संक्रमणों को महामारी बनने से नहीं रोका जा पा रहा है, क्योंकि पूँजीपति वर्ग की यह प्राथमिकता ही नहीं है। वह अपनी मुनाफ़े की हवस में अन्धा है। उसे तुरत मुनाफ़ा चाहिए, वरना उसका प्रतिस्पर्द्धी उसे निगल जायेगा। **आपसी होड़ पर टिकी अराजकतापूर्ण पूँजीवादी व्यवस्था में आन्तरिक तौर पर यह क्षमता ही नहीं है कि वह ऐसे वायरल संक्रमणों को रोक सके, उन्हें कम कर सके या उन्हें महामारी में तब्दील होने से रोक सके। कोरोना संक्रमण भी एक महामारी में तब्दील हुआ है, तो यह कोई प्राकृतिक विपदा नहीं थी जिसे रोका नहीं जा सकता था। निश्चित तौर पर इसे रोका जा सकता था। लेकिन पूँजीपति वर्ग और उसकी राज्यसत्ता के लिए यह न तो ज़रूरी था और न ही सम्भव, हालांकि अब उस महामारी की क़ीमत अभूतपूर्व संकट के रूप में वह ख़ुद भी चुकायेगा और उसका बोझ मेहनतकश जनता पर डालकर उससे भी अधिक से अधिक क़ीमत वसूलेगा।** यह कोई राजनीतिक नारेबाज़ी नहीं है, बल्कि सच है। थोड़ा क़रीबी से समझते हैं।

वायरल संक्रमण कैसे पैदा होते हैं? वे मनुष्यों में कैसे पहुँचते हैं? वे महामारी कैसे बनते हैं? पिछले चार दशकों में वायरल संक्रमणों व महामारियों की बारम्बारता क्यों बढ़ रही है?

जब मनुष्य ज़िन्दा रहने के अपने संघर्ष में प्रकृति के साथ रिश्ता बनाता है, तो उस प्रक्रिया में कई वायरस जो कि पशु जगत व आम तौर पर प्रकृति में मौजूद होते हैं, मनुष्यों के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। हो सकता है कि उन पशुओं में ये वायरस किसी रोग का कारण न बनें, लेकिन मनुष्यों के शरीर में ये अस्वस्थता का कारण बन जाते हैं। इसलिए इतनी बात तय है कि जब इन्सान अपने जीवन के उत्पादन व पुनरुत्पादन के लिए प्रकृति से सम्बन्ध बनायेगा (और वह बनायेगा ही क्योंकि उत्पादन के लिए दो प्रमुख चीज़ें ही ज़रूरी होती हैं: प्राकृतिक सामग्री और श्रम), तो स्वत:स्फूर्त प्रक्रिया में वायरस प्रकृति से मानव शरीर में भी आयेंगे। यह स्वाभाविक है। सारे वायरस बीमारी का कारण या जानलेवा भी नहीं होते हैं, जिनके साथ इन्सान सामान्य जीवन जीता रहता है। लेकिन कुछ वायरस मानव शरीर के लिए रोग का कारण बनते हैं और कई बार मौत का कारण भी बन सकते हैं। लेकिन इतना साफ़ है कि किसी भी व्यवस्था के मातहत, प्रकृति से मनुष्यों के बीच वायरल संक्रमण होंगे। समाजवादी चीन में भी 1957 और फिर 1967 में वायरल संक्रमण फैले थे और उन्होंने कुछ क्षेत्रों में महामारी का रूप भी ले लिया था। चीन की समाजवादी सरकार ने 1967 में मेनिंजाइटिस की महामारी को रोकने के लिए प्रभावित प्रान्तों में सार्वजनिक सभाओं, जुटानों आदि पर रोक लगा दी थी। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि इसके साथ चीन की समाजवादी सरकार ने बेहद सक्रियता से मरीज़ों की पहचान, उन्हें अलग करने और उनका उपचार करने का काम किया था जिससे कि जल्द ही महामारी पर क़ाबू पा लिया गया था। इसलिए स्पष्ट है कि समाजवादी व्यवस्था में भी वायरल संक्रमण होंगे। सवाल यह है कि इन्हें महामारी बनने से कैसे रोका जा सकता है।

वायरस संक्रमण अपने आप में महामारी नहीं होते। वे बचाव व नियंत्रण के सही क़दम सही वक़्त पर न उठाने के कारण महामारी बन जाते हैं। कोरोना महामारी के सन्दर्भ में यह बात स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

लेकिन उससे पहले हम इस बात को समझ लें कि पिछले तीन से चार दशकों में दुनिया भर में वायरल संक्रमण और उनसे पैदा होने वाली महामारियाँ बढ़ी क्यों हैं? निश्चित तौर पर प्रकृति के साथ मनुष्य के सम्बन्ध-सहकार की प्रक्रिया में पशु जगत से वायरल संक्रमण हर सूरत में आयेंगे। लेकिन सीधा-सा गणित है कि अगर पूँजीवादी मुनाफ़े की अन्धी हवस में दुनिया की तमाम कम्पनियाँ जंगलों को नष्ट करती जायेंगी, तमाम प्रजातियों के घरों को समाप्त करती जायेंगी, प्रकृति की जैव-विविधता को समाप्त करती जायेंगी, तो इन्सानों का प्रकृति के साथ यह सम्बन्ध एक विनाशकारी रूप ले लेगा। यदि तमाम जीव-जन्तुओं के प्राकृतिक वास स्थल तबाह होंगे, तो मानव समाज से उनका सम्पर्क इतना बढ़ेगा, जिससे वायरसों के मनुष्यों के संक्रमित होने की सम्भावना काफ़ी बढ़ जायेगी।

विश्व पूँजीवादी व्यवस्था 1970 के दशक से एक संकट से जूझ रही है : यह संकट है मुनाफ़े की गिरती दर का संकट। इसका कारण यह है कि आपसी प्रतिस्पर्द्धा में और साथ ही मज़दूरों के साथ वर्ग संघर्ष के कारण उत्पादन में मशीनीकरण बढ़ता जाता है। पूँजीवादी समाज में पूँजीपति वर्ग इस बात के लिए मजबूर होता है कि वह मज़दूर की उत्पादकता को बढ़ाये, अपने माल की लागत को घटाये, उसकी क़ीमत को कम करे ताकि अपने प्रतिस्पर्द्धी पूँजीपति को बाज़ार में हरा सके। इसी होड़ के कारण समूची पूँजीवादी उत्पादन पद्धति में मशीनीकरण बढ़ता जाता है। लेकिन हम जानते हैं कि नया मूल्य मज़दूर के श्रम से पैदा होता है। अगर सम्पूर्ण पूँजीवादी उत्पादन व्यवस्था के स्तर पर उत्पादन में मज़दूर के जीवित श्रम की भूमिका घटेगी और मशीनों की भूमिका बढ़ेगी, तो कुल नया पैदा होने वाला मूल्य घटेगा और इसलिए मुनाफ़े की दर भी घटेगी। यही वजह है कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में मुनाफ़े की दर में गिरने का एक दीर्घकालिक रुझान होता है। बहरहाल, इस घटते मुनाफ़े को बढ़ाने के लिए पूँजीपति एक ओर मज़दूर वर्ग की उत्पादकता को बढ़ाकर नये सृजित मूल्य में मज़दूरी के हिस्से को सापेक्षिक रूप से घटाता है और मुनाफ़े को बढ़ाता है, मज़दूर के काम के घण्टे को बढ़ाकर अपना मुनाफ़ा बढ़ाता है, वास्तविक मज़दूरी को घटाकर अपना मुनाफ़ा बढ़ाता है। लेकिन साथ ही वह प्रकृति की लूट को भी बढ़ाकर लाभप्रद निवेश के अवसर पैदा करता है और साथ ही प्राकृतिक संसाधनों का निजीकरण कर उन्हें भी माल में तब्दील करता है और अपनी पूँजी बढ़ाता है।

1970 के दशक के पहले भी पूँजीपति वर्ग प्रकृति की इस प्रकार तबाही करता था, लेकिन 1970 के संकट के बाद यह प्रक्रिया अभूतपूर्व रूप से तेज़ और बेलगाम हुई है। आप स्वयं सोचें कि पूँजीपतियों की इसी हवस के कारण पिछले 30 वर्षों में ही सैकड़ों प्रजातियाँ लुप्त हो गयी हैं, हज़ारों प्रजातियाँ लुप्त होने की कगार पर पहुँच गयी हैं और इसी प्रक्रिया में वायरसों के मानव आबादी में "जम्प" करने की प्रक्रिया भी तेज़ हो गयी है। यही वजह है कि पिछले 4 दशकों में वायरल संक्रमणों की बारम्बारता और रफ़्तार भी बढ़ी है और उनके महामारियों में तब्दील होने की रफ़्तार भी।

अब दो शब्दों में यह भी समझ लें कि कोई वायरल संक्रमण महामारी में कैसे तब्दील होता है। वैज्ञानिक क्रान्ति के पहले और मध्ययुग में तो चिकित्सा विज्ञान के पास ही वह ज्ञान व उपकरण मौजूद नहीं थे, जिनसे कि वायरल संक्रमण आरम्भ होते ही उस पर नियंत्रण किया जा सके। आम तौर पर, 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध और विशेष तौर पर 20वीं सदी में नियंत्रण की रणनीतियाँ व्यवस्थित तौर पर अस्तित्व में आयीं। ये रणनीतियाँ क्या हैं? वायरल संक्रमण के पहले मामलों के सामने आने के साथ ही यदि संक्रमित व्यक्तियों की, उनसे सम्पर्क में आने वाले सभी व्यक्तियों की, उनके द्वारा यात्रा किये गये स्थानों पर मौजूद समस्त लोगों की जाँच की जाये, पहचान की जाये, उन्हें अलग किया जाये (क्वारंटाइन किया जाये) और उनका इलाज किया जाये, तो वायरल संक्रमण को महामारी बनने से पहले ही रोका जा सकता है। यदि कोई वायरस बेहद संक्रामक है और बहुत तेज़ी से फैलता है, तो आक्रामक तरीक़े से परीक्षण, पहचान और उपचार के साथ-साथ अस्थायी तौर पर लॉकडाउन करना, या कम-से-कम आंशिक लॉकडाउन करना भी अनिवार्य हो जाता है। यदि सही वक़्त पर ये क़दम उठाये जाते हैं तो फिर किसी वायरल संक्रमण को फैलकर महामारी में तब्दील होने से रोका जा सकता है। लुब्बेलुबाब यह कि कोई वायरल संक्रमण अपने आप में महामारी नहीं होता, बल्कि वह सही क़दम न उठाये जाने पर महामारी बन जाता है।

ज़ाहिर है कि ये क़दम उठाने के अपने ख़र्च होते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था में कौन-सा पूँजीपति इन पर निवेश करेगा? कौन टेस्टिंग किट नि:शुल्क बनाने में निवेश करेगा? कौन उन लाखों मेडिकल कर्मचारियों को वेतन देगा वह भी बिना किसी मुनाफ़े के, जो कि इस संक्रमण की रोकथाम के लिए परीक्षण, पहचान व उपचार कर रहे होंगे? कौन पूरे देश के पैमाने पर नि:शुल्क उपचार, क्वारंटाइन की व्यवस्था करेगा? यदि लॉकडाउन अनिवार्य बन जाता है तो कौन सा पूँजीपति बन्दी के दौरान भी मज़दूरों को वेतन देना चाहेगा? पूँजीवादी राज्यसत्ता भला क्यों गोदामों के दरवाज़े जनता के लिए खोलेगी, क्योंकि इससे अनाज की क़ीमत गिरेगी और खेती के क्षेत्र के पूँजीपतियों, व्यापारियों और बिचौलियों को घाटा होगा? ज़ाहिर है, कोई पूँजीपति और उनकी सत्ता ऐसा नहीं करेंगे। नतीजतन, न तो व्यापक पैमाने पर जाँच, पहचान व इलाज हो पाता है, न ही व्यापक पैमाने पर क्वारंटाइन करने की व्यवस्था हो पाती है, न ही इलाज की

(पेज 9 पर जारी)

कोरोना महामारी और लॉकडाउन : ज़िम्मेदार कौन है? क़ीमत कौन चुका रहा है?

(पेज 8 से आगे)

और न ही ग़रीब आबादी को लॉकडाउन के दौरान समस्त आवश्यक वस्तुएँ व सुविधाएँ मिल पाती हैं। इस प्रकार एक संक्रमण को पूँजीवाद अपनी मुनाफ़े की हवस के चलते महामारी में तब्दील कर देता है। पूरी दुनिया में कुछेक देशों के अपवाद को छोड़ दें, तो आम तौर पर कोरोना महामारी के मामले में भी यही हुआ है।

यानी, एक ओर **ज़्यादा बारम्बारता से वायरल संक्रमण होने के लिए भी ढाँचागत तौर पर पूँजीवादी व्यवस्था ज़िम्मेदार है, और वायरल संक्रमणों को महामारी में तब्दील होने से न रोक पाने के लिए भी पूँजीवादी व्यवस्था और पूँजीपति वर्ग की मुनाफ़े की अन्धी हवस ही ज़िम्मेदार है।**

भारत में कोरोना संकट के लिए कौन ज़िम्मेदार है?

हम शुरू में ही बता देते हैं कि **इसके लिए नरेन्द्र मोदी की सरकार ज़िम्मेदार है।** आइए समझते हैं कि मोदी सरकार कैसे ज़िम्मेदार है।

30 जनवरी को भारत में कोरोना संक्रमण का पहला मामला सामने आया। उसी दिन विश्व स्वास्थ्य संगठन ने कोरोना को "पूरी दुनिया के लिए स्वास्थ्य की एक चिन्ताजनक समस्या" करार दिया। भारत सरकार समेत दुनिया की कई सरकारों को विश्व स्वास्थ्य संगठन ने लिखित चेतावनियाँ भी भेजीं कि तत्काल अन्तरराष्ट्रीय यात्रियों व पर्यटकों की एयरपोर्ट पर ही जाँच व क्वारंटाइन करें, जहाँ कहीं भी पहला मामला सामने आया हो, उसमें संक्रमित व्यक्ति से सम्पर्क में आये सभी लोगों की जाँच व क्वारंटाइनिंग करें, व्यापक पैमाने पर परीक्षण, पहचान व उपचार की तत्काल शुरुआत करें। लेकिन **भारत सरकार ने इनमें से कुछ भी नहीं किया।** उल्टे इसी दौरान बड़े-बड़े जलसों में हज़ारों की संख्या में लोगों को जुटाया गया। ट्रम्प के स्वागत से लेकर मध्य प्रदेश में शिवराज सिंह चौहान के शपथ समारोह और भाजपाई नेताओं की पतनशील पार्टियों तक बड़े-बड़े जुटान होते रहे। तब्लीगी जमात के दिल्ली कार्यक्रम के लिए भी अमित शाह की दिल्ली पुलिस ने सबकुछ जानते हुए इजाज़त दी, ताकि बाद में कोरोना संक्रमण के लिए मुसलमानों को ज़िम्मेदार ठहराया जा सके।

मोदी सरकार कुछ भी करने में नाकाम क्यों रही? इसकी कई वजहें हैं: (1) मोदी-शाह सरकार एनआरसी व सीएए पर चल रहे प्रदर्शनों का दमन करने में लगी हुई थी; (2) मध्यप्रदेश के विधायकों को ख़रीदने-तोड़ने और डराने-धमकाने आदि के लिए भाजपा पैसे जुटाने में लगी हुई थी ताकि कमलनाथ की सरकार को गिराया जा सके; (3) ट्रम्प के स्वागत के लिए 'नमस्ते ट्रम्प' कार्यक्रम के लिए मोदी सरकार जी-जान से लगी थी, क्योंकि उस पर कई व्यापारिक समझौते निर्भर थे जो भारत के पूँजीपति वर्ग के लिए मौजूदा संकट के दौर में ज़रूरी थे। अब पता चल रहा है कि यह कार्यक्रम, जिस पर सैकड़ों करोड़ रुपये बहा दिये गये, अहमदाबाद और गुजरात में कोरोना फैलने के लिए मुख्य रूप से ज़िम्मेदार था; (4) इसी बीच मोदी सरकार पूँजीपतियों के लिए निजीकरण की आँधी चलाने में भी व्यस्त थी; (5) मज़दूरों के हक़ों को छीनने के लिए यूनीफ़ॉर्म लेबर कोड पर भी इसी समय मोदी सरकार का काम जारी था; (6) दिल्ली में दंगे करवाने में भी मोदी-शाह सरकार और संघ परिवार जी-जान से इसी समय लगे हुए थे; और (7) जनता का पैसा चोरी करके भागने वाले मोदी के यारों जैसे कि मेहुल चौकसी, आदि का क़र्ज़ा माफ़ करवाने की योजनाएँ भी इसी समय बन रही थीं।

यानी कि **भारत के बड़े पूँजीपति वर्ग ने जिस काम के लिए फ़ासीवादी मोदी को सत्ता में बिठाया, मोदी सरकार उन कामों को करने में व्यस्त थी। नतीजतन, कोरोना संक्रमण को महामारी बनने से रोकने के लिए मोदी सरकार ने कोई तैयारी नहीं की, कोई क़दम नहीं उठाये। और जब मामला हाथ से निकल गया और कोरोना संक्रमण के मामलों में तेज़ी से बढ़ोत्तरी होने लगी, तो आनन-फ़ानन में लॉकडाउन देश की जनता पर थोप दिया गया।** लॉकडाउन अपने आप में समस्या का समाधान नहीं कर सकता, बल्कि वह केवल कुछ वक़्त देता है जिसमें कि वायरस के फैलने की दर को कम किया जाये, ताकि स्वास्थ्य सेवाओं पर अतिरेकपूर्ण दबाव न पड़े, जिसमें कि आक्रामक तरीक़े से जाँच, पहचान, क्वारंटाइनिंग व इलाज के ज़रिये संक्रमण को समाप्त किया जाये। इसके बिना लॉकडाउन का अर्थ केवल संक्रमण के फैलने की गति को कुछ समय के लिए कम करना मात्र होता है। जैसे ही लॉकडाउन हटता है, वैसे ही संक्रमण पहले से दोगुनी गति से फैलता है। यही भारत में हुआ है। इसलिए थोड़ी बात इस पर भी कर ली जानी चाहिए कि **लॉकडाउन के विषय में मज़दूर वर्ग का स्टैण्ड क्या होना चाहिए।**

क्या लॉकडाउन ज़रूरी था?

पहली बात तो यह है कि यदि शुरू से ही ऊपर बताये गये क़दमों को नहीं उठाया गया तो फिर संक्रमण महामारी में तब्दील हो जाता है और एक मंज़िल के बाद पूर्ण या आंशिक लॉकडाउन बाध्यता बन जाती है, साथ ही शारीरिक दूरी बनाना भी एक अनिवार्यता बन जाती है। लॉकडाउन का अपने आप में विरोध या समर्थन मूर्खतापूर्ण बात है। यदि संक्रमण महामारी में तब्दील हो चुका है, या तीसरे चरण में प्रवेश कर चुका है या करने वाला है, तो फिर लॉकडाउन करना एक ज़रूरत बन जाता है। लेकिन लॉकडाउन के साथ-साथ यदि आक्रामक रणनीति के साथ जाँच, पहचान व इलाज नहीं होता तो लॉकडाउन उल्टा असर करेगा।

भारत में यही हुआ है। पर्याप्त संख्या में जाँचें ही नहीं हुईं और न ही क्वारंटाइनिंग व उपचार की कोई व्यापक सरकारी व्यवस्था की गयी। सही रणनीति यह होती कि सरकार कुछ समय का लॉकडाउन करने से पहले सभी प्रभावित मज़दूरों के रहने, खाने-पीने की पूरी व्यवस्था करती, लोगों को भी तैयारी करने के लिए थोड़ा वक़्त देती। फिर इस लॉकडाउन की अवधि में व्यापक पैमाने पर जाँच, पहचान व इलाज करती और फिर क्रमिक प्रक्रिया में लॉकडाउन को हटाती। लेकिन लम्बे समय तक कुछ न करने के कारण बीमारी के फैल जाने के बाद मोदी सरकार के हाथ-पाँव फूल गये, उसे कुछ समझ नहीं आया कि करना क्या है और उसने अचानक लॉकडाउन कर दिया और उसे बढ़ाती गयी। यह अपने आप में क़तई नाकाफ़ी था, बल्कि नुक़सानदेह था। लॉकडाउन के दौरान व्यापक प्रवासी मज़दूर आबादी, ग़रीब आबादी, रोज़ कमाने-खाने वाली आबादी के लिए खाद्यान्न राशनिंग, नक़द वितरण, स्वास्थ्य व सफ़ाई की उचित व्यवस्था मुहैया कराने के लिए मोदी सरकार ने कोई काम नहीं किया। नतीजतन, लॉकडाउन अपने आप में मज़दूर वर्ग के लिए एक अभूतपूर्व त्रासदी बन गया। यदि लॉकडाउन को सही तैयारी और योजना के साथ और उसके साथ उठाये जाने वाले सारे क़दमों के साथ लागू किया जाता, तो संक्रमण के इस चरण में वह एक सही क़दम होता। लेकिन ऐसा नहीं हुआ, जिसकी क़ीमत देश के मेहनतकश-मज़दूर और पूरी आबादी आज भी चुका रही है।

पहला सवाल यह है कि लॉकडाउन ज़रूरी क्यों बना? क्यों कि मोदी सरकार ने सही समय पर सही क़दम नहीं उठाये। दूसरा सवाल यह है कि भारत में लॉकडाउन कामयाब क्यों नहीं हुआ? क्योंकि अपने आप में लॉकडाउन समस्या का समाधान नहीं है, बल्कि यह केवल संक्रमण की रफ़्तार को अस्थायी रूप से कम करके यह मौक़ा देता है कि सही क़दम उठाये जा सकें और स्वास्थ्य व्यवस्था अत्यधिक दबाव से चरमरा न जाये। तीसरे, लॉकडाउन के समय देश के 70 फ़ीसदी मेहनतकश लोगों के लिए सभी आवश्यक वस्तुओं व सेवाओं के वितरण की पूरी व्यवस्था पहले ही नहीं की गयी, और ऐसे में लॉकडाउन मज़दूरों-मेहनतकशों पर क़हर साबित हुआ।

ऐसी स्थिति में मज़दूर वर्ग की सही माँग क्या होनी चाहिए?

यदि किन्हीं वजहों से लॉकडाउन अनिवार्य बन जाता है (अन्य सभी अनिवार्य क़दमों के साथ) तो फिर क्या मज़दूर वर्ग बिना सोचे-समझे लॉकडाउन को समाप्त करने की माँग कर सकता है? नहीं! इस मामले में मज़दूर वर्ग भी उन्नततम वैज्ञानिक खोजों, बहसों और रायों का अध्ययन करता है, उनकी जाँच करता है और जो सर्वाधिक तथ्यपुष्ट व तर्कपुष्ट राय होती है, उसे अपने कार्यक्रम व माँगें तय करने का आधार बनाता है। इन आधारों पर बात करें तो यदि लॉकडाउन अनिवार्य हो जाये, जो कि अधिकांश देशों में हो गया था, तो मज़दूर वर्ग को क्या माँग करनी चाहिए? इन माँगों को अगर देश के तमाम मज़दूर संगठनों की ओर से एकजुट ढंग से उठाया जाता, तो सरकार पर दबाव बनाया जा सकता था।

1) लॉकडाउन के दौरान सरकार व्यापक पैमाने पर निःशुल्क व समान जाँच, पहचान, क्वारंटाइनिंग व इलाज की राजकीय व्यवस्था करे। इसके लिए स्वास्थ्य व्यवस्था का राष्ट्रीकरण किया जाये, बड़े पैमाने पर पूँजीपति वर्ग व अतिधनाढ्य वर्ग पर विशेष टैक्स लगाये जायें।

2) इसके ज़रिये लॉकडाउन को चरणबद्ध प्रक्रिया में हटाने की स्थिति तैयार की जाये व सामान्य सामाजिक जीवन बहाल किया जाये।

3) लॉकडाउन के दौरान पूरे देश में समस्त मेहनतकश आबादी को निःशुल्क खाद्यान्न राशन देने की व्यवस्था की जाये व इसके लिए एफ़सीआई के गोदामों में पड़े 7.4 करोड़ मीट्रिक टन अनाज व सभी निजी गोदामों में पड़े अनाज का इस्तेमाल किया जाये। ठेका, दिहाड़ी व कैज़ुअल मज़दूरों को कम-से-कम 15,000 रुपये का मासिक गुज़ारा भत्ता नक़द दिया जाये।

4) अनिवार्य सेवाओं में काम करने वाले समस्त कर्मचारियों को, चाहे वे मेडिकल कर्मचारी हों या स्वास्थ्य कर्मचारी या अनिवार्य वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन व वितरण में लगे कर्मचारी, पूर्ण सुरक्षा उपकरण मुहैया कराये जायें, उन्हें विशेष भत्ता दिया जाये और उन्हें स्वच्छ कार्यस्थल, आवास, पीने का पानी मुहैया कराया जाये। इन सभी कार्यस्थलों की नियमित सफ़ाई व विसंक्रमीकरण किया जाये।

5) मज़दूर व मेहनतकश भी अपनी सुरक्षा के लिए शारीरिक दूरी बनाए रख पायें, इसके लिए उन्हें सघन बस्तियों की झुग्गियों से निकालकर अच्छे, साफ़, हवादार घर मुहैया कराये जायें। इसके लिए देशभर में ख़ाली पड़े निजी व सार्वजनिक आवास संसाधनों का राष्ट्रीकरण कर ग़रीब मज़दूर, मेहनतकश व बेघर आबादी को उसमें बसाया जाये। शारीरिक दूरी व स्वास्थ्य सुरक्षा पर जितना अमीरज़ादों का हक़ है, उतना ही मज़दूरों का भी हक़ है।

6) समस्त निजी व सार्वजनिक क्षेत्र के मज़दूरों व कर्मचारियों को वैतनिक अवकाश दिया जाये और सभी छोटे-बड़े मालिकों को इसके लिए बाध्य किया जाये। वेतन न देने वाले मालिकों को जेल भेजा जाये।

7) सभी मेहनतकश परिवारों के बच्चों के पोषण के लिए अपरिहार्य वस्तुएँ जैसे कि दूध, अण्डे, आदि का उनके बीच निःशुल्क वितरण किया जाये।

8) प्रवासी मज़दूरों को सुरक्षित तरीक़े से उनके घर पहुँचाने का इन्तज़ाम किया जाये।

9) मेहनतकश वर्ग के समस्त किरायेदारों का किराया लॉकडाउन ख़त्म होने तक माफ़ किया जाये।

10) यदि माता-पिता को बच्चों की देखभाल के लिए घर पर रहना अनिवार्य हो जाये, तो उन्हें पूर्ण वेतन मुहैया कराया जाना चाहिए।

लेकिन बिखरा हुआ मज़दूर आन्दोलन इन माँगों पर सरकार के ऊपर कोई दबाव बनाने में नाकाम रहा, हालाँकि अनेक यूनियनें, भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी और मज़दूर संगठन इन माँगों को उठाते रहे। अब यह साफ़ हो चुका है कि मोदी सरकार की हवाई घोषणाओं से परे, देश के ज़्यादातर इलाक़ों में बहुतेरे मज़दूरों को लॉकडाउन के महीनों के दौरान सरकार से कोई मदद नहीं मिली, और जो मिली वह बेहद नाकाफ़ी थी। जबकि इसी दौरान सरकार पूँजीपतियों को हज़ारों करोड़ के फ़ायदे देती रही।

पूँजीपति ही समृद्धि पैदा करते हैं, यह कहने वाले मोदी अब यह नहीं बता पा रहे हैं कि काम रुक जाने पर, मज़दूरों के श्रम न कर पाने पर, समृद्धि का पैदा होना क्यों रुक गया है? यदि अम्बानी, अडानी, मोदी, चौकसी, टाटा, बिड़ला, जिन्दल ही समृद्धि पैदा करते हैं, तो अभी भी वे जाकर पैदा क्यों नहीं कर लेते? इसलिए क्योंकि मज़दूरों के श्रम से ही मूल्य पैदा होता है, और श्रम और प्रकृति से ही समृद्धि पैदा होती है, हालाँकि केवल श्रम ही इसमें सक्रिय भूमिका निभाता है। इसलिए पूँजीपतियों के मुनाफ़े, उनकी जमा पूँजी, उनकी धन-दौलत का स्रोत मज़दूरों का श्रम है। यदि वह रुक जाता है तो पूँजीपतियों का पूँजी संचय और समृद्धि भी रुक जाती है। आज अपनी संचित धन-दौलत के बूते पूँजीपति और अमीरज़ादे अपने लिए शारीरिक दूरी, बेहतर चिकित्सा आदि जैसी हर सुविधा पा सकते हैं। लेकिन इस संचित धन-दौलत को पैदा करने वाले मज़दूरों के पास न तो शारीरिक दूरी बनाये रख पाने की सुविधा है, न भोजन, न चिकित्सा, न आवास।

यदि मोदी सरकार ने सही समय पर सही क़दम उठाये होते, तो लॉकडाउन या कम-से-कम पूर्ण लॉकडाउन की स्थिति से बचा जा सकता था। दूसरी बात, जब लॉकडाउन की स्थिति पैदा हो ही गयी, तो मोदी सरकार ने बिना किसी योजना या तैयारी के तानाशाहाना तरीक़े से लॉकडाउन को थोप दिया जिसकी सबसे ज़्यादा क़ीमत ग़रीब मेहनतकश व मज़दूर आबादी को चुकानी पड़ी। तीसरी बात, मज़दूर वर्ग को अपने लिए उन सभी चीज़ों की माँग करनी चाहिए, जो कि उसे अपने स्वास्थ्य, आजीविका, व इन्सानी जीवन के लिए चाहिए, जैसे कि वैतनिक अवकाश, निःशुल्क खाद्यान्न राशनिंग, नक़द गुज़ारा भत्ता, साफ़ आवास व पीने का पानी, साफ़-सफ़ाई आदि। पूँजीपतियों की सेवक सरकार ने पहले बिना किसी तैयारी के लॉकडाउन थोपा और फिर बिना किसी तैयारी के लॉकडाउन खोलना शुरू कर दिया ताकि पूँजीपतियों के मुनाफ़े की चक्की चलती रहे।

हमें आज के दौर में भी वर्ग संघर्ष के वर्गीय नज़रिये से मज़दूर वर्ग के हितों की ठोस पड़ताल करनी चाहिए, उनके आधार पर ठोस माँगें तय करनी चाहिए और उन माँगों के लिए ठोस संघर्षों में उतरना चाहिए।

कोरोना काल में केजरीवाल की व्यापारियों, मालिकों की सेवा और मज़दूरों को सहायता की नौटंकी!

कोरोना महामारी के आने से दुनिया के सभी देशों में मेहनतकश लोगों की ज़िन्दगी की समस्याएँ और बढ़ गयी हैं, लेकिन हमारे देश में कोरोना महामारी की शुरुआत से लेकर अब तक आम मेहनतकश लोगों को जिन परेशानियों और दिक़्क़तों का सामना करना पड़ा, उसका बड़ा कारण यह रहा कि मोदी सरकार ने बिना किसी योजना के, बिना किसी तैयारी के लॉकडाउन घोषित करके थोप दिया। जैसे देश स्तर पर मोदी सरकार कोरोना की शुरुआत से लेकर अब तक इस महामारी से लड़ने के लिए कोई ठोस कार्यक्रम न बनाकर गत्ते की तलवार भांजते हुए लोगों से कुछ नौटंकियों जैसे थाली-कटोरी बजाना, दीये जलाना करवाती रही वैसे ही दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविन्द केजरीवाल भी राजधानी दिल्ली में कोरोना की रोकथाम के लिए बिना किसी ठोस योजना के हवा-हवाई दावे करते हुए कहते रहे कि 'केजरीवाल सरकार कोरोना से चार क़दम आगे चल रही है'। जबकि असलियत यह है कि दिल्ली में कोरोना केस तेज़ी से बढ़ते ही रहे, यह रिपोर्ट लिखे जाने तक दिल्ली में अभी भी लगभग 2 लाख केस हैं और 4,599 लोगों की मौत हो चुकी है और कुछ समय तक कम होने के बाद फिर तेज़ी से केस बढ़ने लगे हैं।

इसके साथ ही इस महामारी के चलते दिल्ली की मज़दूर-मेहनतकश आबादी को रोज़ी-रोटी के संकट सहित जिन दिक़्क़तों का सामना करना पड़ रहा है उसमें केजरीवाल सरकार द्वारा मज़दूरों को सहायता देना नाम मात्र रहा पर इसका विज्ञापन और दिखावा ज़्यादा होता रहा। पूरे देश में लॉकडाउन लगने के बाद राजधानी दिल्ली में हर तरह के काम-धन्धे बन्द हो गये तो यहाँ के मज़दूरों के सामने एक समय रोज़ी-रोटी का संकट बहुत बढ़ गया था। दिल्ली में किराये पर ही रहने वाली प्रवासी मज़दूर आबादी के लिए केजरीवाल सरकार द्वारा कमरों का किराया मालिकों द्वारा छोड़ देने का कोई आदेश या सरकार द्वारा मदद देने जैसी कोई बात ही नहीं की गयी। कहने के लिए मज़दूरों के लिए और ज़रूरतमन्द लोगों के लिए दिल्ली सरकार की ओर से 'मुफ़्त भोजन' की व्यवस्था थी पर असल में ये व्यवस्था बहुत ही ख़राब और नाकाफ़ी थी, घण्टों लाइन में लगने के बाद ही खाना मिल पाता था। दिल्ली सरकार ने दिखाने के लिए ऑनलाइन मिलने वाले ई-कूपन से मुफ़्त राशन की व्यवस्था भी की थी पर योजना का लाभ लेने के लिए ऑनलाइन जो फ़ॉर्म भरना था, उसमें किसी दुकान से फ़ॉर्म भरवाने में 200-250 रुपये लग रहे थे। यहाँ के ख़राब हालातों से मजबूर होकर इन प्रवासी मज़दूरों को वापस अपने गाँव जाने में दिल्ली सरकार से कोई मदद नहीं मिली। केजरीवाल हवाई घोषणा करते रहे हैं कि प्रवासी मज़दूरों का ट्रेन का किराया दिल्ली सरकार देगी पर वास्तविकता में ऐसा नहीं हुआ। असल में दिल्ली के व्यापारियों व फ़ैक्ट्री मालिकों की सच्ची सेवा में लगी केजरीवाल सरकार चाहती ही नहीं थी कि प्रवासी मज़दूर दिल्ली छोड़ गाँव जायें, ताकि हालात ठीक होते ही जब व्यापार शुरू हो, फ़ैक्टरियाँ खुलें तो सस्ते मज़दूर आसानी से मिल जायें। इस कोरोना महामारी में 'आपदा को अवसर में बदलने' की बात करते हुए एक तरफ़ जहाँ देश स्तर पर मोदी सरकार मज़दूर विरोधी नीतियों को खुलेआम लागू करने और टाटा-बिड़ला-अम्बानी सरीखे पूँजीपतियों की सेवा में लगी रही वहीं दूसरी तरफ़ दिल्ली के मुख्यमंत्री केजरीवाल और उनकी सरकार भी दिल्ली के व्यापारियों और फ़ैक्ट्री मालिकों की "समस्याओं" को लेकर बड़ी चिन्तित रहती है। अभी हाल ही में दिल्ली की अर्थव्यवस्था में सुधार के नाम पर केजरीवाल सरकार ने दिल्ली के फ़ैक्ट्री मालिकों के लिए बकाया राशि में 50 फ़ीसदी तक छूट देने की वन टाइम एमनेस्टी स्कीम, आम माफ़ी योजना लागू की है जिसके तहत फ़ैक्ट्री मालिकों के लिए ग्राउण्ड रेण्ट, किराया, लीज़ रेण्ट समेत कई तरह के चार्ज भुगतान में देरी होने पर पेनल्टी पर लगने वाली ब्याज दरों को काफ़ी कम कर दिया गया है। पर केजरीवाल सरकार को इतना ही काफ़ी नहीं लगा तो बीते 23 अगस्त, 2020 को केजरीवाल ने दिल्ली के व्यापारियों और फ़ैक्ट्री मालिकों से डिजिटल संवाद किया, उनकी समस्या सुनी और उसके समाधान पर बातें की।

वहीं दूसरी तरफ़ कोरोना महामारी के इस समय में दिल्ली के सरकारी अस्पतालों में लगभग 20 सालों से कार्यरत सभी अस्थायी पैरामेडिकल व नर्सिंग कर्मचारियों को काम से निकालने का आदेश जारी किया गया है। दिल्ली के फ़ैक्ट्री मालिकों और व्यापारियों की सेवा में जी-जान से जुटी केजरीवाल सरकार को दिल्ली के मेहनतकशों-मज़दूरों की समस्याओं से कोई सरोकार नहीं है। दिल्ली में बवाना, वज़ीरपुर, शाहबाद डेयरी और करावल नगर सहित अधिकतर औद्योगिक इलाक़ों में न्यूनतम मज़दूरी सहित कोई भी श्रम-क़ानून लागू नहीं होता है। दिल्ली की बहुसंख्यक मेहनतकश आबादी के पास कोई राशन कार्ड नहीं है जिसके चलते उन्हें मुफ़्त राशन नहीं मिल रहा है। कोरोना महामारी के इस दौर में काम-धन्धा मन्दा होने के कारण काम भी नहीं मिल रहा है। पर दिल्ली के मुख्यमंत्री केजरीवाल को मज़दूरों की समस्याओं की नहीं बल्कि मालिकों की समस्याओं की चिन्ता ज़्यादा है।

पिछले दिनों केजरीवाल सरकार ने दिल्ली में नौकरी ढूँढ़ने वाले और नौकरी देने वाले को मिलाने की बात करते हुए एक 'ऑनलाइन रोज़गार बाज़ार' शुरू किया। इस 'रोज़गार बाज़ार' शुरू करने की घोषणा करते समय की गयी प्रेस वार्ता में केजरीवाल ने फ़ैक्ट्री मालिकों-ठेकेदारों को और बेरोज़गार नौजवानों-मज़दूरों को एक-दूसरे से सम्पर्क कराने की इस योजना का लम्बा-चौड़ा बखान तो किया पर पूरी इस पूरी वार्ता में श्रम-क़ानूनों को सख़्ती से लागू करने पर कोई बात ही नहीं की। असल में इस सारी योजना की कवायद यह थी कि दिल्ली के फ़ैक्ट्री मालिकों, ठेकेदारों और व्यापारियों को इस 'ऑनलाइन रोज़गार बाज़ार' के माध्यम से आसानी से कम वेतन पर नौजवान और मज़दूर मिल जायें। दिल्ली में लॉकडाउन हटाने के बावजूद मज़दूरों को जल्दी काम नहीं मिल रहा है और न ही सरकार की ओर से मज़दूरों को अब कोई सुविधा ही मिल रही है और न ही रोज़गार देने की कोई ठोस योजना है। हालाँकि यहाँ के व्यापारियों, मालिकों को लाभ पहुँचाने के लिए कोई न कोई योजना हर हफ़्ते आ ही जाती है। मज़दूर-विरोधी फ़ासीवादी मोदी सरकार को 'हम मिलकर काम करेंगे जी' का सन्देश देते हुए केजरीवाल भी दिल्ली के मालिकों-व्यापारियों की सेवा में तत्परता से लगे हुए थे, लगे हुए हैं।

– बिगुल संवाददाता

हरियाणा में शिक्षा व्यवस्था और स्थायी रोज़गार सरकारी हमले की चपेट में !

हरियाणा की खट्टर-दुष्यन्त के नेतृत्व वाली भाजपा-जजपा ठगबन्धन सरकार प्रदेश के 450 स्कूलों में विज्ञान की पढ़ाई बन्द करने जा रही है। यह क़दम बच्चों की कम संख्या के नाम पर उठाया जा रहा है। होना तो यह चाहिए था कि सरकारी मशीनरी द्वारा प्रचार करके और पढ़ाई का स्तर सुधारकर सरकारी स्कूलों में बच्चों की संख्या और फ़िर स्कूलों की संख्या को भी बढ़ाया जाता किन्तु यहाँ यह जनविरोधी सरकार विभिन्न संकायों की पढ़ाई और स्कूलों को ही बन्द करने पर तुली हुई है! हरियाणा में शिक्षा व्यवस्था लगातार सरकारी हमले की चपेट में है। मोटे तौर पर हरियाणा में शिक्षा व्यवस्था पर हमला कांग्रेस की हुड्डा सरकार के समय में ही होना शुरू हो गया था। खट्टर सरकार ने अपने पिछले कार्यकाल से ही शिक्षा व्यवस्था को बर्बाद करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी है।

खट्टर सरकार अपने पिछले कार्यकाल के समय 2015 से 2019 के बीच के चार सालों के दौरान 208 सरकारी स्कूल बन्द कर चुकी है जबकि इस अवधि में सिर्फ़ 23 नये सरकारी स्कूल खुले हैं किन्तु दूसरी ओर 974 प्राइवेट स्कूलों को मान्यता दी गयी। यही नहीं आने वाले समय में 1,026 प्राइमरी स्कूलों को बन्द करने की योजना थी। ये ऐसे स्कूल थे जिनमें छात्रों की संख्या 25 से कम थी। इसके अलावा खट्टर सरकार अध्यापकों की छँटनी करने का भी कोई मौक़ा नहीं चूक रही है। हाल ही में कोर्ट के आदेश की आड़ लेकर 1983 पीटीआई शिक्षकों को बाहर का रास्ता दिखा दिया गया है। हालाँकि यदि सरकार पीटीआई अध्यापकों की सही ढंग से पैरवी करती तो इनका रोज़गार बच सकता था। दूसरी तरफ़ सरकार ख़ाली पड़े पदों को भरने की बजाय उन पदों को ही ख़त्म करने की योजना बना रही है! प्रदेश में अब तक 25 विद्यार्थियों के अनुपात में 1 शिक्षक के हिसाब से प्राथमिक शिक्षकों की भर्ती की जाती थी यानी 25 छात्रों पर एक शिक्षक। अब सरकार इसे बढ़ाकर 30 अनुपात 1 करने जा रही है। नयी भर्ती तो गयी भाड़ में ऐसा करने से जेबीटी शिक्षकों के ही तक़रीबन 4,000 पद और "अतिरिक्त" हो जायेंगे! प्राथमिक स्तर पर 125 बच्चों पर एक हैडमास्टर की जगह अब 151 बच्चों पर एक हैडमास्टर की नियुक्ति की जायेगी। इसी को कहते हैं हींग लगे न फ़िटकरी रंग चोखा!

एक आरटीआई के जवाब में हरियाणा सरकार ने पिछले महीने ही यह माना था कि प्रदेश में स्कूली शिक्षकों के 31,232 पद रिक्त हैं जबकि 2017 की हरियाणा अध्यापक संघ की 'डायरी' की रिपोर्ट कहती है कि हरियाणा में शिक्षकों के कुल 1,28,405 पदों में से 44,962 पद रिक्त हैं। हमारी जानकारी में तबसे कोई भर्ती भी नहीं निकली है तो ये पद घट कैसे गये!? एक अन्य आरटीआई से यह पता चलता है कि ख़ुद राज्य सरकार के अनुसार ही हरियाणा में जेबीटी शिक्षकों के भी 6,000 के क़रीब पद रिक्त पड़े हैं जबकि 96,000 के क़रीब जेबीटी-टीजीटी-एचटेट पास युवा चप्पलें फटकारते घूम रहे हैं। अध्यापकों की छँटनी हो रही है तथा स्कूलों और संकायों को बन्द किया जा रहा है। यही कारण है कि सरकारी शिक्षा व्यवस्था का भट्ठा बैठा हुआ है और बहुत सारे पढ़े-लिखे सक्षम युवा या तो दो-ढाई हज़ार में प्राइवेट स्कूलों में अपना ख़ून चुसवाने के लिए मजबूर हैं या फ़िर मायूसी और अवसाद की दलदल में समा रहे हैं।

बदतर शिक्षा व्यवस्था के चलते बच्चों का भविष्य ख़तरे में है तो बेरोज़गारी से उपजी हताशा युवाओं को नशे, अपराध और आत्महत्या की तरफ़ धकेल रही है। सेन्टर फ़ॉर मोनिटरिंग इण्डियन इकॉनमी (CMIE) के अगस्त 2020 के ताज़ा आँकड़ों के अनुसार हरियाणा में बेरोज़गारी की दर 33.5% है। यह बेरोज़गारी दर देश में सभी राज्यों से ज़्यादा है। इसके बावजूद भी शिक्षा व्यवस्था के ख़ाली पदों तक को नहीं भरा जा रहा है। शिक्षा-रोज़गार का सवाल सरकार के एजेण्डे से पूरी तरह से ग़ायब है। ऐसा इसलिए है क्योंकि सरकार में बैठे धनपशुओं के पालतू चाकर यह अच्छी तरह से जानते हैं कि लोगों को बेवक़ूफ़ कैसे बनाया जाता है और असल मुद्दों से जनता का ध्यान कैसे भटकाया जाता है। उदाहरण के लिए प्राइवेट नौकरियों में 75 प्रतिशत आरक्षण देने का लुकमा इसीलिए फेंका गया है ताकि नौजवान आबादी क्षेत्रवाद में उलझकर एक-दूसरे का ही सिर फोड़ने में लग जाये और हरियाणा क्षेत्रवाद का नया अखाड़ा बन जाये।

अब सवाल यह है कि सरकार क्यों नहीं चाहती कि शिक्षकों की भर्ती हो व सरकारी स्कूली व्यवस्था बेहतर हो? इसका कारण यह है कि अगर ऐसा होता है तो सरकार में बैठे या सरकार के चहेते निजी शिक्षा माफ़िया धन्नासेठों के मुनाफ़े पर चोट पहुँचेगी। बड़ी पूँजी के लिए शिक्षा के क्षेत्र की बाधाएँ हटाने के मक़सद से ही अध्यापकों की छँटनी हो रही है तथा स्कूलों और संकायों को बन्द किया जा रहा है। बड़ी पूँजी के लिए शिक्षा का क्षेत्र भी मुनाफ़ा कमाने का महत्वपूर्ण क्षेत्र है। सरकारी शिक्षा व्यवस्था शिक्षा में पूँजी निवेश को आतुर बाज़ारू ताक़तों के सामने फ़िलहाल न केवल एक चुनौती है बल्कि सरकारी ढाँचे के समाप्त होते ही ज़मीन, भवन से लेकर तमाम संसाधन आदिम पूँजी संचय के तौर पर इनके द्वारा लगभग मुफ़्त के दामों में हथियाये जायेंगे।

नयी शिक्षा नीति - 2020 आने के बाद तो तस्वीर और भी साफ़ हो चुकी है कि आने वाले समय में जो सरकारी स्कूली व्यवस्था पहले से ही चरमरा रही है उसे पूरी तरह से कैसे ढहाया जायेगा। शिक्षा को बाज़ारू माल बनाकर उन्हीं के लिए सीमित कर दिया जायेगा जो चाँदी का चम्मच मुँह में लेकर पैदा होते हैं। प्रदेश की बहुसंख्यक ग़रीब आबादी के बच्चे शिक्षा से महरूम कर दिये जायेंगे। और फ़िर बच्चों की कमी दिखाकर सरकारी शिक्षकों की नौकरियों पर क़ैंची चला दी जायेगी।

अगर शिक्षा और रोज़गार के अपने मूलभूत हक़ को पाना है तो प्रदेश के लाखों-लाख छात्रों-युवाओं और प्रबुद्ध नागरिकों को एकजुट होना होगा और प्रदेश की आम जनता को भी लामबद्ध करना होगा। "सबको निःशुल्क और एक समान शिक्षा" और "हर किसी को पक्के रोज़गार के हक़ की गारण्टी" की माँगों पर हमें सरकारों को घेरना चाहिए। यदि हम आज भी नहीं चेते तो कल को बहुत देर हो चुकी होगी।

– बिगुल संवाददाता

कोरोना महामारी ने खोली पूँजीवादी चिकित्सा-व्यवस्था की पोल

आज मनुष्यता को समाजवादी चिकित्सा व्यवस्था की ज़रूरत है

– आनन्द

चीन की एक दन्तकथा के अनुसार 2000 ईसापूर्व के आसपास वहाँ शासन कर रहे 'पीत सम्राट' के दरबारी वैद्य ने बीमारियों के इलाज के विषय में कहा था, "बीमारी फैलने के बाद दवा पर काम करना ठीक वैसा ही है जैसे प्यास लगने के बाद कुआँ खोदना या फिर युद्ध शुरू होने के बाद हथियार तैयार करना।" लेकिन आज कोरोना महामारी के दौर में हम हर ओर यही होता हुआ देख रहे हैं।

चीन के इतिहास में 1949 में हुई नवजनवादी क्रान्ति के बाद के तीन दशकों तक का ही दौर ऐसा दौर कहा जा सकता है जब बीमारियों की रोकथाम पर उपरोक्त उक्ति के उलट उचित ज़ोर दिया गया और सारी जनता को स्वास्थ्य सुविधाएँ मुहैया कराने को प्राथमिकता दी गयी। आज जब पूरे विश्व में पूँजीवादी चिकित्सा व्यवस्था कोरोना महामारी के सामने लाचार नज़र आ रही है तो चीन के क्रान्तिकारी दौर की समाजवादी चिकित्सा व्यवस्था के बारे में जानना ज़रूरी है। यह अफ़सोस की बात है कि आज चीन अपनी उस क्रान्तिकारी विरासत से कोसों दूर जा चुका है, जिसके तमाम विनाशकारी दुष्परिणामों में एक यह भी है कि आज का चीन कोविड-19 की सही समय पर शिनाख़्त करके उसे क़ाबू में नहीं कर सका और उसे एक विश्वव्यापी महामारी में तब्दील होने से रोक नहीं सका।

"बाज़ार समाजवाद" के दौर में चीन के पूँजीवादी शासकों ने माओकालीन चीन में चिकित्सा के क्षेत्र में किये गये शानदार प्रयोगों को मिट्टी में मिलाते हुए चिकित्सा क्षेत्र और दवा उद्योग के बाज़ारीकरण को बढ़ावा दिया। परन्तु अब भी वहाँ चिकित्सा व्यवस्था का बड़ा हिस्सा सरकार के नियंत्रण में है और साथ ही समाजवादी अतीत की वजह से चीन के लोगों में अब भी स्वास्थ्य को लेकर सजगता की संस्कृति पूरी तरह ख़त्म नहीं हो गयी है। इन वजहों से चीन देर से ही सही परन्तु कोविड-19 को वुहान शहर से बाहर फैलने से रोकने में सफल रहा। लेकिन इस बीच यह बीमारी दुनिया के अन्य हिस्सों में फैल चुकी थी और तमाम विकसित पूँजीवादी देशों की चिकित्सा व्यवस्थाएँ भी इस महामारी को रोकने में नाकाम साबित हुईं। इस वैश्विक महामारी पर क़ाबू कर पाने में तमाम पूँजीवादी देशों की सरकारों की नीतियाँ और उनकी ओर से की गयी कोताही बेशक दोषी रहीं, परन्तु यह भी सच है कि पूँजीवादी चिकित्सा व्यवस्था ऐसी महामारियों की रोकथाम करने में सक्षम ही नहीं है। इसलिए हमारे सवालों के घेरे में केवल सरकारें ही नहीं बल्कि यह समूची व्यवस्था होनी चाहिए।

कोरोना जैसी महामारी की रोकथाम करने में पूँजीवादी चिकित्सा व्यवस्था इसलिए अक्षम है क्योंकि इसका मक़सद समाज को रोगमुक्त करना नहीं बल्कि रोगों के फैलने की परिस्थिति में मुनाफ़ा कमाने के अवसर तलाशना है। चाहे वह बीमारियों पर शोध का क्षेत्र हो या दवाइयों व अन्य चिकित्सा सामग्रियों (पर्सनल प्रोटेक्शन इक्विपमेंट, टेस्टिंग किट, मास्क, ग्लव्स, वेण्टिलेटर, सर्जिकल व अन्य चिकित्सीय उपकरण आदि) का उत्पादन हो, या अस्पताल में रोगियों का इलाज करना हो, चाहे पैथोलॉजी का क्षेत्र हो या फिर स्वास्थ्य बीमा का क्षेत्र हो, पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों के विकास के साथ ही साथ ये सभी विभिन्न क़िस्म के माल में तब्दील होते जाते हैं। पूँजीपतियों की नज़र इन मालों के उपयोग मूल्य पर नहीं बल्कि इनके विनिमय मूल्य पर गड़ी रहती है।

पिछले 4-5 दशक के दौरान पूँजीवादी विश्व में चिकित्सा के इस व्यवसाय में विशालकाय बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ लगातार अपने पाँव पसारती जा रही हैं। लोगों की विपत्तियों को भुनाकर मुनाफ़ा कमाने के इस गोरखधन्धे को 'मेडिकल-इण्डस्ट्रियल कॉम्पलेक्स' के नाम से भी जाना जाता है। विश्व साम्राज्यवाद के चौधरी अमेरिका में यह गोरखधन्धा अपने सबसे नंगे रूप में देखा जा सकता है जहाँ मुट्ठीभर फ़ार्मा कम्पनियों, बीमा कम्पनियों और अस्पतालों की चेन ने समूची चिकित्सा व्यवस्था को अपने चंगुल में रखा हुआ है। लोगों की जानों से खेलने वाली इन कम्पनियों के शीर्ष पर जो लोग विराजमान होते हैं उनका चिकित्सा क्षेत्र से कोई लेना-देना नहीं होता, वे अन्य व्यवसायों की ही भाँति चिकित्सा को भी मुनाफ़ा कमाने का ज़रिया समझते हुए अपनी योजनाएँ बनाते हैं। ब्रिटेन व यूरोप के कई देशों की बात करें तो अगर उन देशों में अब भी सार्वजनिक स्वास्थ्य सुविधाएँ अमेरिका की तुलना में बेहतर हैं तो इसकी वजह वहाँ के पूँजीपतियों की भलमनसाहत नहीं, बल्कि उन देशों में मज़दूर वर्ग के संघर्षों की विरासत रही है। हालाँकि नवउदारवादी भूमण्डलीकरण के तीन से चार दशकों में वे देश भी स्वास्थ्य सेवाओं के निजीकरण और बाज़ारीकरण की महामारी से अछूते नहीं रहे हैं और उन देशों में स्वास्थ्य बजट में लगातार कटौतियाँ की जाती रही हैं। इस वजह से इटली, स्पेन और इंग्लैण्ड जैसे देशों की चिकित्सा व्यवस्था को भी कोरोना महामारी पर क़ाबू पाने में अक्षम्य देरी हुई। स्वास्थ्य सेवाओं के निजीकरण और बाज़ारीकरण की महामारी के सबसे ख़तरनाक नतीजे भारत जैसे तीसरी दुनिया के देशों में देखने को आ रहे हैं जहाँ लूट के इस व्यवसाय के चंगुल में फँसकर हर साल लाखों लोग तबाह-बर्बाद हो जाते हैं।

पूँजीवादी चिकित्सा व्यवस्था में फ़ार्मा कम्पनियों की प्राथमिकता समाज की ज़रूरत के अनुसार रोगों से निजात पाने की नहीं बल्कि मुनाफ़े के आधार पर तय होती है। उनमें शोध पर आवंटित बजट में कटौती करके विज्ञापन, मार्केटिंग, पेटेण्ट की ख़रीद-फ़रोख़्त, दूसरी कम्पनियों के अधिग्रहण आदि पर ज़ोर आम बात है। जिन बीमारियों पर शोध होता भी है उनकी भी प्राथमिकता इस बात से तय होती है कि किस बीमारी की दवा बनाने में जल्दी और ज़्यादा मुनाफ़ा मिलेगा। अधिकांश फ़ार्मा कम्पिनयाँ फ़्लू, मलेरिया, इंसेफ़लाइटिस जैसी करोड़ों लोगों को प्रभावित करने वाली बीमारियों के लिए सस्ती और सर्वसुलभ एण्टीवायरल और एण्टीबॉयोटिक दवाओं की बजाय मोटापा कम करने, बुढ़ापा रोकने, पुंसत्व बढ़ाने और जीवनशैली से सम्बन्धित रोगों की दवाओं पर शोध करने में ज़्यादा संसाधन ख़र्च करती हैं क्योंकि इनमें मुनाफ़ा ज़्यादा होता है। 2003 में सार्स बीमारी के फैलने के बाद कुछ समय तक उसके टीके पर शोध शुरू हुआ था, परन्तु मुनाफ़ा कमाने का तात्कालिक मौक़ा न देख ये शोध भी ज़्यादा लम्बे समय तक नहीं टिक सके। जीवविज्ञान व चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में हाल के वर्षों में हुई अभूतपूर्व तरक्की के आधार पर कई विशेषज्ञ यह दावा करते हैं कि सिद्धान्ततः फ्लू की सार्वभौमिक वैक्सीन मुमकिन है, परन्तु चूँकि फ़ार्मा कम्पनियों को उसमें ज़्यादा मुनाफ़े की सम्भावना नहीं दिखती है इसलिए ऐसी वैक्सीन अभी तक तैयार नहीं हो सकी है।

इसी तरह स्वास्थ्य बीमा के पूरे क्षेत्र में दैत्याकार बीमा कम्पनियों का दबदबा है जो लोगों के जीवन की असुरक्षा को भुनाकर और लोगों को विपत्ति का डर दिखाकर क़िस्म-क़िस्म के बीमा पॉलिसी रूपी माल बेचती हैं। अमेरिका के चिकित्सा जगत में तो इन बीमा कम्पनियों के वर्चस्व की वजह से वहाँ स्वास्थ्य सुविधाएँ ग़रीबों-मज़दूरों की एक अच्छी-ख़ासी आबादी की पहुँच के बाहर हो चुकी हैं क्योंकि वे बीमा पॉलिसी ख़रीद नहीं सकते और दवा-इलाज का ख़र्च बेहद ज़्यादा है। जो लोग बीमा पॉलिसी लेते भी हैं उनमें से भी कई सही इलाज न मिलने पर मर जाते हैं क्योंकि बीमा कम्पनियाँ कोई दुर्घटना या बीमारी होने पर इलाज का ख़र्च उठाने से बचने के लिए तरह-तरह की तिकड़में करती हैं। ऐसे में समझा जा सकता है कि मुनाफ़े पर टिकी बीमा की यह प्रणाली लोगों की जेब पर डाका डालने का काम करती है, ना कि विपत्ति के समय लोगों को सम्बल देने का।

निजी अस्पतालों में दवा-इलाज के नाम पर बेहिसाब लूट पर टिकी पूँजीवादी चिकित्सा व्यवस्था कोरोना जैसी महामारी के लिए बिल्कुल तैयार ही नहीं थी। अमेरिका जैसे समृद्ध देश की चिकित्सा व्यवस्था इस महामारी के आते ही धराशायी हो गयी। वहाँ निजी अस्पतालों की पूरी व्यवस्था पहले से ही घनघोर व्यावसायिकता के चंगुल में थी। नवउदारवाद के दौर में अस्पतालों में बेड की संख्या में लगातार गिरावट देखने में आयी। अस्पतालों पर यह दबाव रहता है कि उनके पास कुल बेड इतने ही होने चाहिए, कि किसी भी समय ख़ाली बेड की संख्या कुल बेड के 10 फ़ीसदी से अधिक न हो। यही स्थिति मास्क, ग्लव्स, सैनिटाइज़र व चिकित्सीय उपकरणों की रहती है। डॉक्टरों, नर्सों, वार्ड ब्वाय आदि की भर्ती बिल्कुल किसी कम्पनी की तर्ज़ पर सीमित संख्या में करके उनसे ज़्यादा से ज़्यादा काम कराया जाता है और ज़रूरत न होने पर उनको नौकरी से निकाल बाहर किया जाता है। ज़ाहिरा तौर पर ऐसी व्यवस्था में अकस्मात आने वाली किसी महामारी के लिए तैयारी की कोई गुंजाइश नहीं रहती है। ऐसे में यह ताज्जुब की बात नहीं है कि अमेरिका जैसे विकसित देश में जब कोविड-19 की बीमारी फैलनी शुरू हुई तब वहाँ के अस्पतालों में बेड, टेस्टिंग किट, मास्क, सैनिटाइज़र, पर्सनल प्रोटेक्शन इक्विपमेंट, वेण्टिलेटर आदि की भारी किल्लत हो गयी जिसकी वजह से कुछ ही हफ़्तों में कोरोना महामारी के केस और मरने वालों की संख्या वहाँ दुनिया में सबसे ज़्यादा हो गयी।

क्यों बेहतर है समाजवादी चिकित्सा व्यवस्था

पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली में निहित अराजकता और योजनाविहीनता का असर पूँजीवादी चिकित्सा व्यवस्था की सीमा तय कर देता है। किसी प्राकृतिक आपदा या महामारी के आते ही इस व्यवस्था की सीमा जगज़ाहिर हो जाती है। पूँजीवादी ढाँचे के भीतर इस सीमा से पार पाने का कोई रास्ता नहीं होता। इसका एकमात्र रास्ता इस पूँजीवादी ढाँचे को तोड़कर समाजवादी व्यवस्था क़ायम करने से होकर जाता है। समाजवादी व्यवस्था में उत्पादन की सामाजिक योजना के अहम हिस्से के रूप में चिकित्सा क्षेत्र का भी योजनाबद्ध विकास किया जाता है। समाजवादी चिकित्सा व्यवस्था में मुनाफ़े की कोई जगह नहीं होती है और समाज में चिकित्सा शोध, दवा व चिकित्सा उपकरणों का उत्पादन, अस्पताल, नर्सिंग होम व पैथोलॉजी आदि का एकमात्र उद्देश्य समाज को बीमारियों से निजात दिलाकर एक स्वस्थ समाज बनाना होता है। समाज के योजनाबद्ध विकास में महामारियों की रोकथाम व उन पर नियंत्रण की योजना भी शामिल होती है।

जैसाकि सोवियत संघ (1956 तक) व चीन (1976 तक) के समाजवादी प्रयोगों में देखने में आया, समाजवादी चिकित्सा व्यवस्था में स्वास्थ्य और साफ़-सफ़ाई के मुद्दे पर व्यापक जन-लामबन्दी की जाती है और चिकित्सा के क्षेत्र में जनता की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की जाती है। सोवियत संघ में सोवियतों के स्तर पर और चीन में जनकम्यूनों व अन्य उत्पादक इकाइयों एवं स्कूल-कॉलेज के स्तर तक स्वास्थ्य सुविधाओं और साफ़-सफ़ाई की योजना बनायी जाती थी और लोगों की सक्रिय भागीदारी के ज़रिये योजनाओं को लागू किया जाता था। जनभागीदारी व योजनाबद्धता पर आधारित समाजवादी चिकित्सा व्यवस्था की ही बदौलत न सिर्फ़ रूस में, जो 1917 की अक्टूबर क्रान्ति के पहले एक पिछड़ा पूँजीवाद देश था, बल्कि चीन में भी, जो 1949 की नवजनवादी क्रान्ति के पहले एक बेहद पिछड़ा अर्द्ध-सामन्ती व अर्द्ध-औपनिवेशिक देश था, महज़ कुछ वर्षों के भीतर तमाम जानलेवा बीमारियों पर क़ाबू पा लिया गया। माओकालीन चीन की चिकित्सा व्यवस्था कितनी कारगर थी इसका अन्दाज़ा इसी से लगया जा सकता है कि क्रान्ति से पहले वहाँ नवजात मृत्यु दर 1000 में 300 तक पहुँच चुकी थी जोकि 1970 के दशक तक आते-आते 40 से नीचे हो गयी जो अमेरिका जैसे विकसित देशों के समतुल्य थी।

इस सन्दर्भ में चीन की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान चिकित्सा के क्षेत्र में किये गये प्रयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस दौर में चिकित्सा व्यवस्था को महानगरों में स्थित बड़े अस्पतालों पर केन्द्रित करने की बजाय गाँवों और दूर-दराज़ के इलाक़ों तक ले जाया गया जहाँ चीन की अधिकांश आबादी रहती थी। इस दौरान माओ के नेतृत्व में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने बीमारियों की रोकथाम पर विशेष ज़ोर देते हुए लोगों की सक्रिय भागीदारी पर विशेष ज़ोर दिया, हालाँकि इससे पहले भी 1950 के दशक में भी 'देशभक्तिपूर्ण स्वास्थ्य अभियान' जैसे अभियानों के तहत लोगों को स्वास्थ्य व स्वच्छता की मुहिम में शामिल किया गया था। सांस्कृतिक क्रान्ति के दौर में गाँव-गाँव व दूरदराज़ के इलाक़ों तक स्वास्थ्य सुविधाओं को ले जाने वाले स्वास्थ्यकर्मियों की एक पूरी फ़ौज खड़ी की गयी थी जिसमें बड़ी संख्या में छात्रों-युवाओं और विशेष रूप से लड़कियों को शामिल किया गया था। 'बेयरफुट यानी नंगे पाँव डॉक्टर' कहे जाने वाले इन स्वास्थ्यकर्मियों को तीन से छह महीने का बुनियादी मेडिकल और पैरामेडिकल प्रशिक्षण दिया जाता

(पेज 12 पर जारी)

उच्चतम अन्यायालय के आदेश से महामारी के दौर में 48,000 परिवारों को बेघर करने की बर्बर मुहिम शुरू

सुप्रीम कोर्ट ने देश की राजधानी में रेल पटरियों के पास बनी 48,000 झुग्गियों को अगले तीन महीने में हटा देने का आदेश जारी कर दिया है। यह वही सुप्रीम कोर्ट है जिसे मार्च और अप्रैल में सड़कों पर चल रहे करोड़ों मज़दूरों की हालत पर सुनवाई करने के लिए समय नहीं मिल रहा था। और अब हज़ारों मज़दूरों और उनके बच्चों को सड़क पर फेंक देने का आदेश जारी करने में उसे ज़रा भी समय नहीं लगा।

इस आदेश के तहत जिन लोगों के घर गिराये जायेंगे वे कहाँ रहेंगे इसके बारे में न तो आदेश में कुछ कहा गया है और न ही केन्द्र अथवा राज्य सरकार की तरफ़ से अब तक कोई बात आयी है। गोदी मीडिया सुबह शाम मुम्बई में एक अभिनेत्री के दफ़्तर तोड़े जाने वाली ख़बर पर महाभारत किये जा रहा है, जबकि देश की राजधानी में लाखों आबादी को बेघर करने पर अमल शुरू हो चुका है।

इस सन्देह से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि रेलवे को बेचने में जुटी मोदी सरकार इन बस्तियों को उजाड़कर वहाँ की ज़मीन भी बेचकर पैसे कमाने की योजना बना रही है।

बीती 10 सितम्बर को केशवपुरम में 20 से 25 झुग्गियाँ तोड़ दी गयीं। बिना किसी पूर्वसूचना के रेलवे और पुलिस विभाग ने घटनास्थल पर पहुँचकर तोड़-फोड़ करना शुरू कर दिया। पटरी के किनारे इन बस्तियों में रहने वाले लोग मेहनत-मशक़्क़त कर जीवन जीते हैं। जो थोड़ा बहुत जीवनयापन के लिए बुनियादी सामान उनके पास था, वह अब मलबे का रूप ले चुका है। बरसों से इस स्थान पर रह रहे लोगों ने जब सामान निकालने के लिए कुछ वक़्त की गुज़ारिश की तो पुरुष पुलिसकर्मियों ने महिलाओं और स्थानीय लोगों के साथ मारपीट शुरू कर दी और उनके सामान तथा मवेशियों को जान-बूझकर नुक़सान पहुँचाया। बीमार, बुज़ुर्ग, दूधमुँहे बच्चे, किसी का भी ख़्याल किये बिना तोड़-फोड़ की कार्रवाई शुरू कर दी गयी।

चुनाव के वक़्त पक्का मकान देने के झूठे वादे करने वाली केन्द्र तथा राज्य सरकारें तसल्ली से सोयी हुई हैं, किन्तु जिनकी झुग्गी उजाड़ी जानी है, उनकी रातों की नींद हराम है। कई सालों से रह रहे लोगों का कहना है कि अचानक आये इस आदेश के बाद वे कहाँ जायेंगे। सीलमपुर रेलवे ट्रैक के नज़दीक बसे लोगों ने 'दिल्ली आवास अधिकार अभियान' के कार्यकर्ताओं को बताया कि पहले साल की शुरुआत में हुए दंगे, उसके बाद लॉकडाउन के चलते उनकी आर्थिक स्थिति बेहद ख़राब हो गयी है। ऐसे में यह आदेश उनके लिए बेहद गम्भीर मुसीबत बनकर सामने आया है।

एक झुग्गी में एक अकेली बुज़ुर्ग महिला रहती हैं, जो कपड़े में बटन टाँकने का काम करके आजीविका चलाती हैं। उन्होंने बताया कि वे पिछले तीस सालों से यहाँ रह रही हैं, अब इस उम्र में वह क्या करेंगी? कहाँ जायेंगी? एक अन्य महिला ने बताया कि उनके घर में लकवे का मरीज़ है, और आय का साधन नगण्य है, परिवार में वे अकेली कमाने वाली हैं। वे भी बटन टाँकने का काम करती हैं, इतने कम समय में उनके लिए किसी भी तरह से रिहायश का दूसरा इन्तज़ाम कर पाना असम्भव है। किसी ने बताया कि कुछ दिनों पहले ही उसने अपनी पूरी जमापूँजी लगाकर झुग्गी की मरम्मत करायी थी, इस फ़ैसले के बाद पूरा परिवार सदमे में है। रेलवे पटरी के पास बसी झुग्गियों में रहने वाले लोगों के जीवन की कमोबेश ऐसी ही तस्वीर है।

'दिल्ली आवास अधिकार अभियान' आवास के अधिकार को हर नागरिक का मूलभूत अधिकार मानता है। यह पिछले पाँच वर्षों से दिल्ली के मज़दूर इलाक़ों तथा झुग्गी बस्तियों में आवास, आजीविका तथा जीवन से जुड़े मसलों को लेकर लड़ता रहा है। आज आये इस आदेश के बाद सरकारों को इस बात पर घेरने की आवश्यकता है कि लोगों के रिहायश का पुख्ता इन्तज़ाम कराया जाये।

झुग्गियों की जगह पक्के मकान के हवा-हवाई वायदे करने वाली केजरीवाल सरकार इस मुद्दे पर लफ़्फ़ाज़ी के अलावा कुछ नहीं कर रही है। 'दिल्ली में झुग्गियाँ नहीं टूटने देंगे' के आप पार्टी के दावे की सच्चाई तब सामने आ गयी जब केशवपुरम में मज़दूरों की झुग्गियों को तोड़ा गया और आम आदमी पार्टी का कोई नेता-मंत्री मज़दूरों के साथ खड़ा नहीं दिखा।

मज़दूरों को यह समझ लेना होगा कि ये बहरी सरकार बिना ज़मीनी संघर्षों के हमारी आवाज़ नहीं सुनेगी। पक्का व स्थायी आवास हमारा बुनियादी अधिकार है और हम इसके लिए लड़ते रहेंगे। 'दिल्ली आवास अधिकार अभियान' की तरफ़ से इस मुद्दे पर दिल्ली की सभी प्रभावित बस्तियों में अभियान चलाया जा रहा है।

– बिगुल संवाददाता

महामारी के दौर में भी जारी हैं दलितों पर हमले और अपमान

(पेज 7 से आगे)

की राजनीति का फ़ायदा हरेक जाति में बैठे शासक वर्ग के लोग ही उठाते हैं। रामदास आठवले, उदित राज, जीतन राम मांझी, रामविलास पासवान इत्यादि इसके मौजूँ उदाहरण हैं। यदि देशव्यापी आँकड़ों पर नज़र दौड़ाएँ तो दलितों का क़रीब 95 प्रतिशत हिस्सा खेत मज़दूर, निर्माण मज़दूर, सफ़ाईकर्मी और औद्योगिक मज़दूर के तौर पर खट रहा है। अस्मितावादी और प्रतीकवादी राजनीति करने वाले लोग विरले ही इस मेहनतकश दलित आबादी के मुद्दों को उठाते हैं। दूसरा हर अस्मितावादी राजनीति अपने बरक्स अन्य जातियों की अस्मितावादी राजनीति को भी बढ़ावा देती है। तमाम जातियों में बैठे पूँजीपति वर्ग के विभिन्न हिस्से शासन-सत्ता में भागीदारी करने के मक़सद से जातीय पहचान को आधार बनाकर नूराकुश्ती करते रहते हैं और तमाम जातियों की मेहनतकश जनता के बीच सिरफुटौव्वल करवाते रहते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था के पैरोकार भी यही चाहते हैं कि जनता अपनी बर्बादी के असल कारणों को समझकर व्यवस्था के ख़िलाफ़ एकजुट होने की बजाय आपस में ही लड़ती रहे।

दलित विरोधी उत्पीड़न के मुद्दों के ख़िलाफ़ लड़े जाने वाले संघर्षों को मज़बूती के साथ तभी लड़ा जा सकता है जब हर जाति की व्यापक मेहनतकश जनता को जाति-व्यवस्था के ख़िलाफ़ लामबद्ध किया जायेगा। शिक्षा, रोज़गार, चिकित्सा, आवास, महँगाई जैसे मुद्दों पर होने वाले संघर्षों में हर जाति की मेहनतकश जनता की भागीदारी सुनिश्चित की जानी चाहिए। साथ ही कमेरों के बीच वैचारिक-शैक्षणिक मुहिम चलायी जानी भी बेहद ज़रूरी है जिसके माध्यम से लोगों के बीच जाति-व्यवस्था के इतिहास और वर्तमान से जुड़े विभिन्न पहलुओं और इसकी समाप्ति के आवश्यक कार्यभारों व चुनौतियों को स्पष्टता के साथ रखा जा सके। तथाकथित उच्च जाति वालों के सामने भावनात्मक अपीलों से कुछ नहीं होगा बल्कि उनकी भी मेहनतकश जनता को अपने आन्दोलन के साथ जोड़कर सक्रिय करना होगा। जाति-व्यवस्था विरोधी आन्दोलनों को मेहनतकश वर्ग की एकजुटता के दम पर ही असल मक़ाम तक पहुँचाया जा सकता है।

– अखिल भारतीय जाति विरोधी मंच की ओर से जारी

लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग-चेतना की ज़रूरत है। ग़रीब, मेहनतकशों व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं। इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी ग़रीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताक़त अपने हाथों में लेने का प्रयत्न करो। इन यत्नों से तुम्हारा नुक़सान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी ज़ंजीरें कट जायेंगी और तुम्हें आर्थिक स्वतंत्रता मिलेगी।

– भगतसिंह

('साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज' लेख से)

कोरोना महामारी ने खोली पूँजीवादी चिकित्सा-व्यवस्था की पोल

(पेज 11 से आगे)

था। ये स्वास्थ्यकर्मी उपचार से ज़्यादा रोकथाम पर ज़ोर देते थे। वे टीके लगाने, इम्यूनाइज़ेशन करने, शिशु का जन्म कराने व अन्य प्राथमिक उपचार करने में प्रशिक्षित थे। आधुनिक चिकित्सा प्रणाली व औषधियों के साथ ही साथ वे एक्युपंक्चर व मॉक्सीबशन जैसी चीन की पारम्परिक चिकित्सा प्रणाली व औषधियों का प्रयोग करते थे। गम्भीर रोगों से ग्रस्त मरीज़ों को वे काउण्टी के अस्पताल में भेजते थे। 1970 के दशक में चीन के स्वास्थ्य कार्यक्रम को विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भी स्वीकार किया था और दुनिया के अन्य हिस्सों में इस तरह के स्वास्थ्य कार्यक्रम को बढ़ावा देने का अनुमोदन किया था।

चिकित्सा के क्षेत्र में सोवियत संघ और चीन में समाजवादी दौर में किये गये प्रयोगों के अतिरिक्त क्यूबा में किये गये प्रयोग का भी विशेष रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए। क्यूबा के समाजवादी प्रयोग के तमाम भटकावों की वजह से उसे समाजवाद के मॉडल के रूप में तो पेश नहीं किया जा सकता परन्तु चिकित्सा के क्षेत्र में क्यूबा ने जो प्रगति की है उसको तमाम बुर्जुआ विश्लेषक भी स्वीकार करते हैं। दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में आने वाली तमाम प्राकृतिक आपदाओं की ही तरह कोरोना महामारी के दौरान भी क्यूबा ने अपने डॉक्टरों को कई अन्य देशों में भेजा जो वहाँ की चिकित्सा व्यवस्था के उन्नत रूप को दिखाता है।

समाजवादी चिकित्सा व्यवस्था कोरोना जैसी महामारियों से निजात पाने में सक्षम क्यों होगी यह कई स्तरों पर समझा जा सकता है। सबसे पहले तो समाजवादी चिकित्सा व्यवस्था में ऐसी महामारियों की रोकथाम के लिए एण्टीवायरस व एण्टीबैक्टीरियल दवाओं के शोध की राह में मुनाफ़े की बाधा नहीं होने की वजह से सही समय पर टीकों की खोज हो सकेगी। जब तक टीके की खोज नहीं होती तब तक पूरा चिकित्सा तंत्र कोरोना जैसे वायरस के संक्रमण होते ही उसे क़ाबू में करने के लिए सक्रिय हो जायेगा। अस्पतालों के बेड, टेस्टिंग किट व चिकित्सीय उपकरणों से लेकर मास्क, सैनिटाइज़र्स आदि के उत्पादन को प्राथमिकता दी जायेगी और मुनाफ़ाखोरी व जमाखोरी न होने की वजह से स्वास्थ्य सुविधाओं की किल्लत नहीं होगी और उनकी पहुँच हर नागरिक तक होगी। इस वजह से कोरोना जैसी महामारियों की आक्रामक टेस्टिंग, ट्रीटमेंट और क्वारंटाइन करना भी आसान होगा जिससे यह महामारी अगर फैल भी जाये तो उस पर जल्द ही क़ाबू पाया जा सकेगा।

समाजवादी व्यवस्था के तहत ज़रूरत पड़ने पर ऐसी महामारियों के लिए विशेष अस्पताल महज़ कुछ दिनों में बनाना आसान होगा क्योंकि उत्पादन व चिकित्सा प्रणाली योजनाबद्ध होगी। उत्पादन मुनाफ़े की बजाय लोगों की ज़रूरतों पर टिका होने की वजह से समाजवादी राज्य के लिए यह सुनिश्चित करना आसान होगा कि महामारी की परिस्थिति में लोगों के भूखे मरने की नौबत न आये। यही नहीं संचार तंत्र पर समाजवादी राज्य का नियंत्रण होने और कम समय में जनता की व्यापक लामबन्दी कर पाने की क्षमता की वजह से 'सोशल डिस्टेंसिंग' जैसी रणनीति भी कारगर ढंग से लागू हो सकेगी और अन्धविश्वासों व अफ़वाहों पर भी आसानी से नकेल कसी जा सकेगी। चूँकि समाजवादी व्यवस्था लगातार वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा देती है इसलिए पूरे समाज के लिए बीमारियों व महामारियों से लड़ना भी आसान हो जाता है।

कोरोना महामारी से पहले भी पूँजीवाद को उखाड़ फेंकने के पर्याप्त कारण थे। लेकिन इस महामारी ने यह दिन के उजाले की तरह साफ़ कर दिया है कि पूँजीवाद का एक-एक दिन मनुष्यता के अस्तित्व के लिए ख़तरा बनता जा रहा है। पूँजीवाद को उखाड़कर समाजवाद की स्थापना की ज़रूरत आज पहले से कहीं ज़्यादा आसन्न हो गयी है।

‘नयी शिक्षा नीति 2020’ : लफ़्फ़ाज़ियों की आड़ में शिक्षा को आम जन से दूर करने की परियोजना

– इन्द्रजीत

छात्रों-युवाओं और बुद्धिजीवियों के तमाम विरोध को दरकिनार करते हुए दिनांक 29 जुलाई के दिन ‘नयी शिक्षा नीति 2020’ को मोदी सरकार के कैबिनेट ने मंज़ूरी दे दी है। **यह शिक्षा नीति शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी निवेश को घटायेगी और देशी-विदेशी बड़ी पूँजी के लिए शिक्षा क्षेत्र के दरवाज़े खोलेगी। व्यापक मेहनतकश जनता के बेटे-बेटियों के लिए शिक्षा प्राप्त करने के रास्ते और भी संकरे हो जायेंगे।** ‘नयी शिक्षा नीति’ के मोटे पोथे में शब्दजाल तो बहुत लम्बा-चौड़ा बुना गया है लेकिन जैसे ही आप इसकी अन्तर्वस्तु तक जायेंगे तो जानेंगे कि यह शब्दजाल केवल “जलते सत्य को टालने” भर के लिए बुना गया है।

प्रो. के. कस्तूरीरंगन के नेतृत्व में बनी कमेटी ने नयी शिक्षा नीति का प्रारूप (ड्राफ़्ट) सरकार को 31 मई 2019 को सौंपा था। यह ड्राफ़्ट अंग्रेज़ी में 484 और हिन्दी में 648 पेज का था। इसी के आधार पर मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने 55 पेज का ड्राफ़्ट केन्द्रीय मंत्रिमण्डल को भेज दिया था। मंत्रिमण्डल इसे पारित करके चर्चा हेतु संसद के दोनों सदनों में पेश करता और फिर बहस-मुबाहिसे के बाद ये ड्राफ़्ट देश में नयी शिक्षा नीति के रूप में लागू होता। किन्तु अब केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्री प्रकाश जावड़ेकर और केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री रमेश पोखरियाल निशंक के बयानों से लगता है कि ‘घर की बही, काका लिखणिया’ के दौर-दौरा में संसद में पेश किये बिना ही इसे क़ानून बना दिया जायेगा। नयी शिक्षा नीति अगले 20-30 सालों तक शिक्षा के स्वरूप और ढाँचे को निर्धारित करेगी।

भारत में पहली शिक्षा नीति 1968 में आयी थी। आज़ादी के बाद से लेकर 1968 तक शिक्षा की दिशा टाटा-बिड़ला प्लान से निर्देशित थी। इसके बाद दूसरी शिक्षा नीति 1986 में आयी जिसे 1992 में उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों के मद्देनज़र संशोधित किया गया। तभी से शिक्षा के क्षेत्र में निजी पूँजी की घुसपैठ की परियोजना को अंजाम दिया गया तथा शिक्षा भी मुनाफ़ा कमाने का एक साधन बन गयी। अब सरकार तीसरी शिक्षा नीति लेकर आयी है।

‘नयी शिक्षा नीति 2020’ बातें तो बड़ी-बड़ी कर रही है किन्तु इसकी बातों और इसमें सुझाये गये प्रावधानों में विरोधाभास हैं। यह नीति शिक्षा के स्तर और गुणवत्ता को उन्नत करने की बात कहती है किन्तु दूसरी तरफ़ दूसरी कक्षा तक की पढ़ाई के लिए सरकार की ज़िम्मेदारी को ख़त्म करने वाली है। **शिक्षा नीति का मूल प्रारूप देश में स्कूली स्तर पर 10 लाख अध्यापकों की कमी को तो स्वीकार करता है परन्तु इन पदों की भर्ती की कोई ठोस योजना पेश नहीं करता। यह शिक्षा नीति फाउण्डेशनल स्टेज यानी पहले पाँच साल की पढ़ाई (3+2) में अध्यापक की कोई ज़रूरत महसूस नही करती। इस काम को एनजीओ कर्मी, आँगनवाड़ी कर्मी और अन्य स्वयंसेवक अंजाम देंगे। वैसे भी यह नीति तथाकथित ढाँचागत समायोजन की बात करती है जिसका मतलब है कम संसाधनों में ज़्यादा करो यानी सरकार का अपनी ज़िम्मेदारियों से पल्ला झाड़ने का प्रयास!**

‘नयी शिक्षा नीति’ का दस्तावेज़ ख़ुद स्वीकार करता है कि देश में अब भी 25% यानी 30 करोड़ से ऊपर लोग अनपढ़ हैं फ़िर भी नयी शिक्षा नीति में शिक्षा की सार्वभौमिकता का पहलू छोड़ दिया गया है। यानी शिक्षा की पहुँच को आख़िरी आदमी तक ले जाने की कोई ज़रूरत नहीं! वैसे तो यह ड्राफ़्ट 2030 तक 100% साक्षरता के लक्ष्य को पाने की बात करता है परन्तु दूसरी तरफ़ कहता है कि जहाँ 50 से कम बच्चे हों वहाँ स्कूल को बन्द कर देना चाहिए। आज स्कूलों को बढ़ाने की ज़रूरत है किन्तु यह नीति ठीक इसके उलट उपाय सुझा रही है। पुरानी शिक्षा नीति कहती थी कि स्कूल पहुँच के हिसाब से होना चाहिए ना कि बच्चों की संख्या के हिसाब से।

नयी शिक्षा नीति का मूल ड्राफ़्ट शिक्षा के ऊपर जीडीपी का 6% और केन्द्रीय बजट का 10% ख़र्च करने की बात करता है किन्तु साथ में ये यह भी कहता है कि यदि कर (टैक्स) कम इकट्ठा हो तो इतना ख़र्च नहीं किया जा सकता। यह ड्राफ़्ट शिक्षा के अधिकार के तहत 3-18 साल तक के बच्चे को निःशुल्क शिक्षा देने की बात करता है। किन्तु आयु सीमा 18 साल तक नहीं होनी चाहिए बल्कि सरकार को नर्सरी से पीएचडी तक की शिक्षा निःशुल्क और एक समान उपलब्ध करानी चाहिए।

नयी शिक्षा नीति के मूल ड्राफ़्ट में यह भी सुझाव दिया गया है कि छठी कक्षा से बच्चों को छोटे-मोटे काम-धन्धे भी सिखाये जायेंगे। आज हमारे देश के उद्योगों में उत्पादन क्षमता का सिर्फ़ 73% ही पैदा किया जा रहा है (यह आँकड़ा कोरोना पूर्व का है)। पूँजीपति आपसी प्रतिस्पर्धा में सस्ते श्रमिकों की आपूर्ति के लिए वोकेशनल सेण्टरों, आईटीआई, पॉलिटेक्निक इत्यादि का रुख़ कर रहे हैं ताकि इन्हें सस्ते मज़दूर मिल सकें और शिक्षा पर ख़र्च भी कम करना पड़े। यह क़दम इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर नयी शिक्षा नीति में शामिल किया गया है। कुल मिलाकर नयी शिक्षा नीति का प्रारूप जनता के समान और निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार को तिलांजलि देने के समान है।

नयी शिक्षा नीति 2020 लागू होने के बाद उच्च शिक्षा के हालात तो और भी बुरे होने वाले हैं। पहले से ही लागू सेमेस्टर सिस्टम, एफ़वाईयूपी, सीबीडीएस, यूजीसी की जगह एचईसीआई इत्यादि स्कीमें भारत की शिक्षा व्यवस्था को अमेरिकी पद्धति के अनुसार ढालने के प्रयास थे। अब विदेशी शिक्षा माफ़िया देश में निवेश करके अपने कैम्पस खड़े कर सकेंगे और पहले से ही अनुकूल शिक्षा ढाँचे को सीधे तौर पर निगल सकेंगे। शिक्षा के मूलभूत ढाँचे की तो बात ही क्या करें यहाँ तो शिक्षकों का ही टोटा है। केन्द्रीय और राज्य विश्वविद्यालयों में तक़रीबन 70 हजार प्रोफ़ेसरों के पद ख़ाली हैं।

उच्च शिक्षा को सुधारने के लिए हायर एजुकेशन फ़ाइनेंशियल एजेंसी (HEFA) बनी हुई है उसका बजट पिछले साल के 2,750 करोड़ से 650 करोड़ घटाकर अब 2,100 करोड़ कर दिया है। पिछले साल भी ख़र्च सिर्फ़ 250 करोड़ ही किया गया था। दरअसल हेफ़ा अब विश्वविद्यालयों को अनुदान की बजाय क़र्ज़ देगी जो उन्हें 10 वर्ष के अन्दर वापस चुकाना होगा। यानी विश्वविद्यालय इसे विद्यार्थियों से वसूलेंगे। सरकार लगातार उच्च शिक्षा बजट को कम कर रही है। लगातार कोर्सों को स्व-वित्तपोषित बनाया जा रहा है। विश्वविद्यालयों को स्वायत्ता दी जा रही है जिसका मतलब है सरकार विश्वविद्यालय को कोई फ़ण्ड जारी नहीं करेगी। **सरकार की मानें तो विश्वविद्यालय को अपना फ़ण्ड, फ़ीसें बढ़ाकर या किसी भी अन्य तरीक़े से जिसका बोझ अन्ततः विद्यार्थियों पर ही पड़ेगा, करना होगा। इसके पीछे सरकार ख़ज़ाना ख़ाली होने की बात करती है किन्तु कैग की रिपोर्ट के अनुसार 2007 से अब तक प्राप्त कुल शिक्षा सेस में से 2 लाख 18 हज़ार करोड़ रुपये की राशि सरकार ने ख़र्च ही नहीं की है। क्या ये पैसा पूँजीपतियों को बेलआउट पैकेज देने पर ख़र्च किया जायेगा?** एक तरफ़ सरकार ढोंग करती है कि बजट का 10 प्रतिशत और सकल घरेलू उत्पाद का छह प्रतिशत शिक्षा पर ख़र्च होना चाहिए दूसरी ओर 10 और 6 प्रतिशत तो छोड़ ही दीजिए जो थोड़ी बहुत राशि शिक्षा बजट के तौर पर आवण्टित होती है सरकार उसमें से भी डण्डी मारने की फ़िराक़ में रहती है।

कुल-मिलाकर ‘नयी शिक्षा नीति 2020’ जनता के हक़ के प्रति नहीं बल्कि बड़ी पूँजी के प्रति समर्पित है। कोरोना काल में ही आपदा में अवसर तलाशते हुए ऑनलाइन शिक्षा के नाम पर व्यापक मेहनतकश जनता के बेटे-बेटियों को अघोषित तौर पर शिक्षा व्यवस्था से बाहर कर दिया गया है। शिक्षा की नयी नीति हरेक स्तर की शिक्षा पर नकारात्मक असर डालेगी। यह समय देश के छात्रों-युवाओं, श्रमिकों और बौद्धिक तबक़े के लिए शिक्षा के अधिकार को हासिल करने हेतु नये सिरे से जनान्दोलन खड़े करने के लिए कमर कस लेने का समय है।

बहाली के मुद्दे पर हरियाणा के 1983 पीटीआई शिक्षक संघर्ष की राह पर

यह रिपोर्ट लिखे जाने तक दिनांक 8 सितम्बर को पीटीआई शिक्षकों के धरने को 85 दिन हो चुके हैं। भाजपा-जजपा सरकार इन शिक्षकों को लगातार बरगलाने पर लगी है लेकिन शिक्षक भी हार मानने को तैयार नहीं हैं। नित-नये ढंग से पीटीआई शिक्षक अपनी एकजुटता का इज़हार कर रहे हैं। विभिन्न कर्मचारी यूनियन और जन संगठन भी शिक्षक आन्दोलन का समर्थन कर रहे हैं।

विगत 28 मई को सर्वोच्च न्यायालय ने एक आदेश जारी किया था जिसके अनुसार शारीरिक शिक्षकों की 2010 की भर्ती को रद्द कर दिया गया। सुप्रीम कोर्ट अपने फ़ैसले में यह बात साफ़ कहता है कि भर्ती की प्रक्रिया में दिक़्क़तें थीं लेकिन पीटीआई शिक्षकों की कोई ग़लती नहीं है। सुप्रीम कोर्ट ने हरियाणा सरकार को आदेश दिया कि इन 1,983 शिक्षकों को अगले 3 दिन में हटा दिया जाये। सरकार ने बिना ढंग से कोर्ट में ज़िरह किये 1 जून को 1,983 शारीरिक शिक्षकों को नौकरी से हटा दिया।

इस मुद्दे पर पीटीआई अध्यापकों का कहना है कि सुप्रीम कोर्ट में हरियाणा सरकार ने सही ढंग से पीटीआई पक्ष की पैरवी ही नहीं की। सुप्रीम कोर्ट के निर्णय में यह कहीं नहीं कहा गया है कि शिक्षकों ने धांधली के ज़रिये नौकरी प्राप्त की है। बल्कि आयोग के भर्ती के तरीक़े पर सवाल उठाते हुए भर्ती को रद्द किया है। कोर्ट ने सरकार से यह भी पूछा कि इन अध्यापकों को निकालकर आप मैन पावर कहाँ से लाओगे? इस पर भी सरकार ने गोल-मोल जवाब देते हुए 1983 पीटीआई की ज़रूरत को ही नकार दिया।

पीड़ित अध्यापक कहते हैं कि अब ये कहाँ का न्याय है कि करे कोई और भुगते कोई। 10 साल अपनी सेवाएँ देने के बदले सरकार ने इन्हें बेरोज़गार कर दिया है और कोरोना जैसी महामारी के संकट में सड़क पर उतरने के लिए मजबूर कर दिया है। कई शिक्षक जिनकी मौत हो चुकी है उनके निर्भरों को पेंशन मिल रही है, अब नौकरी जाने के बाद उक्त निर्भर भी सड़क पर आ जायेंगे। शिक्षकों का कहना है कि भर्ती कांग्रेस की भूपेन्दर सिंह हुड्डा सरकार के कार्यकाल में हुई थी इसलिए इस पर राजनीति की जा रही है। कर्मचारी मुख्यमंत्री व तमाम मंत्रियों-उच्चाधिकारियों से भी न्याय की गुहार लगाते हुए कई बार मिल चुके हैं लेकिन इन सबका रुख़ इस मुद्दे के प्रति सकारात्मक नहीं है। मुख्यमंत्री बेतुके बयान दे रहे हैं, उनका कहना है कि अगर आप में योग्यता है तो नयी भर्ती की परीक्षा दीजिए और रोज़गार बचा लीजिए। कभी सरकार कहती है कि वह पीटीआई शिक्षकों को अतिथि अध्यापकों की तर्ज़ पर सहयोजित करने के लिए तैयार है। असल में कोर्ट के सामने सरकार के द्वारा कर्मचारियों के पक्ष की ढंग से पैरवी नहीं की गयी है। ख़ुद खट्टर सरकार के राज में तो सीधे तौर पर भर्तियों में अनियमिताएँ पायी गयी हैं। नायाब तहसीलदार का तो पेपर ही लीक हो गया था। पेपर लीक करवाने वाले जेल में हैं परन्तु खट्टर साहब ने भर्ती को कैंसिल नहीं किया। इतनी धांधली होने के बावजूद भी भर्तियों में पारदर्शिता का ढोंग किया जा रहा है। सुप्रीम कोर्ट ने पीटीआई भर्ती को जिन दो तर्कों पर कैंसिल किया है उनमें से एक यह है कि भर्ती की प्रक्रिया किस आधार पर होगी व किस चीज़ को कितनी वेटेज मिलेगी यह साफ़ नहीं था। खट्टर सरकार के कार्यकाल में भी बहुत सारी भर्तियों में यही कमी रही है लेकिन खट्टर सरकार अपनी इस कमी पर कोई बात नहीं कर रही है।

भर्ती प्रक्रियाओं को सरल-पारदर्शी बनाकर समयबद्धता के साथ निबटाया जाना चाहिए। लेकिन हमारे यहाँ एक भर्ती पूरी होने में ही वर्षों निकल जाते हैं। फिर अगर कोई धाँधली होती है तो न्यायालय इतनी धीमी प्रक्रिया से फ़ैसले लेते हैं कि उसमें भी सालों लग जाते हैं। बहुत बार आयोग और अफ़सरशाही की ग़लती का शिकार कर्मचारियों को बना दिया जाता है।

फ़िलहाल रिपोर्ट लिखे जाने तक नौकरी बहाली के लिए 1983 पीटीआई शिक्षकों का आन्दोलन पुरज़ोर तरीक़े से जारी है।

– बिगुल संवाददाता

एक महान क्रान्तिकारी की आख़िरी लड़ाई और उसकी याद के आईने में हमारा समय

13 सितम्बर को यतीन्द्रनाथ दास की शहादत को 91 बरस हो गये। उनकी लड़ाई अंग्रेज़ों की जेल में राजनीतिक बन्दियों के अधिकारों के लिए थी। मगर जिस आज़ाद हिन्दुस्तान के लिए तिल-तिलकर भूख से मरने का रास्ता जतिन ने चुना था, क्या वह हमें मिला?

जतिन दास, भगतसिंह और उनके तमाम साथी आज होते तो जेलों में होते, और जेल के भीतर वैसे ही लड़ रहे होते। फ़र्क़ बस इतना होता कि टीवी चैनलों और अख़बारों के दफ़्तरों में बैठे दल्ले उन्हें अपराधी, ख़ून के प्यासे और देशद्रोही साबित कर चुके होते। जैसे आज भी देश की जेलों में क़ैद हज़ारों नागरिकों के साथ किया जा रहा है, जिनका गुनाह सिर्फ़ यह है कि उन्होंने चन्द लुटेरों के हक़ में करोड़ों-करोड़ आम लोगों की लूट और बर्बादी के ख़िलाफ़ आवाज़ उठायी है, करोड़ों-करोड़ लोगों को धर्म और जाति के आधार पर दोयम दर्जे के नागरिक बना देने की साज़िशों का विरोध किया है, और हर ज़ोरो-ज़ुल्म के सामने डटकर खड़े होते रहे हैं।

जतिन दास की शहादत को आज याद करने का तभी कोई मतलब है जब आप इस "निज़ामे कोहना" के ख़िलाफ़ बोलने का हौसला रखते हों, वरना हर क्रान्तिकारी के शहादत दिवस पर ट्वीट करने वाले पाखण्डी नेताओं और हममें कोई फ़र्क़ नहीं रह जायेगा।

आइए, इस मौक़े पर यतीन्द्रनाथ दास के साथी और उनके अन्तिम दिनों के संघर्ष के भागीदार शिव वर्मा के शब्दों में इस महान क्रान्तिकारी की आख़िरी लड़ाई को और उन इन्क़लाबी नौजवानों के जीवट को जानने की कोशिश करते हैं।

(शिव वर्मा की पुस्तक 'संस्मृतियाँ' से साभार)

10 जुलाई, 1929 को जब पहले पहल हम लोग अदालत में एक साथ मिले तो भगतसिंह और बटुकेश्वरदत्त की भूख हड़ताल को एक महीने से ऊपर हो चुका था लेकिन सरकार टस से मस नहीं हो रही थी। कुछ साथियों ने प्रस्ताव किया कि बाक़ी लोग भी तुरन्त भूख हड़ताल का ऐलान कर दें। भगतसिंह और दास तत्काल भूख हड़ताल का ऐलान करने के पक्ष में नहीं थे। वे लोग भूख हड़ताल को एक राजनीतिक लड़ाई के रूप में लड़ना चाहते थे और इसलिए लड़ाई की ओर कोई भी क़दम उठाने से पहले वे आपस की बातचीत द्वारा उसके हर पहलू को अच्छी तरह तौल लेने के पक्ष में थे। इसके अतिरिक्त माँगपत्र के रूप में एक अच्छे राजनीतिक दस्तावेज़ द्वारा भूख हड़ताल के उद्देश्य को जनता तथा सरकार तक पहुँचाना भी आवश्यक था। इस बातचीत तथा माँग पत्र तैयार करने में तीन दिन बीत गये और 13 तारीख़ से भगतसिंह और दत्त की माँगों के समर्थन में दो-चार को छोड़कर बाक़ी सभी साथियों ने भूख हड़ताल आरम्भ कर दी।

हम लोगों में से यतीन्द्रनाथ दास को छोड़कर और किसी को भी अनशन का कोई अनुभव न था। दास ने किसी भी साथी द्वारा भावावेश में अनशन की घोषणा कर देने का विरोध किया। उन्होंने कहा, "इस हड़ताल का ऐलान कर हम लोग एक ऐसे लम्बे संघर्ष में उतर रहे हैं जो एक माने में रिवाल्वर या पिस्तौल की लड़ाई से कहीं कठिन है। अनशन द्वारा तिल-तिल कर अपने आपको खपा कर इंच-इंच मौत की ओर सरकने की अपेक्षा पुलिस की गोली का शिकार होकर या फाँसी पर झूलकर मर जाना आसान है। और एक बार अनशन के मैदान में उतर कर पीछे हटना क्रान्तिकारियों की प्रतिष्ठा को नीचे गिराना होगा। ऐसी स्थिति में संघर्ष में कूदकर पीछे हटने की अपेक्षा आरम्भ से ही उसमें न शरीक होना कहीं बेहतर होगा।"

उन्होंने यह भी कहा कि जहाँ तक उनका सवाल है वे एक बार अनशन आरम्भ हो जाने पर उस समय तक पीछे नहीं हटेंगे जब तक सरकार हमारे माँगपत्र को स्वीकार नहीं कर लेती। दूसरे साथियों को उन्होंने सलाह दी कि वे एक दिन का समय लेकर अपने आप को अच्छी तरह तौल लें और यदि किसी को अन्त तक चल पाने में अपने ऊपर पूरा भरोसा न हो तो वह किसी भी हालत में अनशन आरम्भ न करे। साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि जो साथी अनशन में भाग नहीं लेंगे वे हमारे वैसे ही सम्मानित क्रान्तिकारी साथी रहेंगे जैसे दूसरे लोग।

पूर्व निर्णय के अनुसार, 13 जुलाई से हमारा ऐतिहासिक अनशन आरम्भ हुआ। हमारा फ़ैसला था कि अनशन के बीच बीमार पड़ने पर भी हम मुँह से किसी प्रकार की दवाइयाँ आदि नहीं लेंगे और शक्ति रहते अधिकारियों को बलपूर्वक दूध भी नहीं पिलाने देंगे।

आरम्भ में दस दिन तक प्रायः सभी साथी चलते-फिरते रहे और इस आशा से कि शायद कुछ लोग कमज़ोरी का शिकार होकर पीछे हट जायें, सरकार ने हमारी ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। जेल अधिकारी हमें डिगाने के उद्देश्य से अच्छे से अच्छा सुगन्धित खाना बनवा कर हमारी कोठरियों में सजाकर रखवाते। जैसे ही अधिकारीगण खाना, फल, दूध आदि रखकर पीठ फेरते वैसे ही अधिकांश साथी या तो उसे उठाकर बाहर फेंक देते या उसी समय उसे गन्दा कर देते। यतीन्द्रनाथ दास ही एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें इस बारे में अपने ऊपर पूरा विश्वास था और उन्होंने न तो कभी खाने को फेंका और न इसे गन्दा किया। उनकी कोठरी से अधिकारी रोज़ गिनकर अपनी रोटियाँ, फल आदि उठा ले जाते थे।

दस दिन बाद कुछ लोगों की हालत ख़राब होते देख सरकार द्वारा नियुक्त कई डॉक्टरों के दल ने आकर हमारा चार्ज ले लिया और ग्यारहवें दिन से बलपूर्वक दूध पिलाने का नाटक आरम्भ हो गया। आठ-दस चुने हुए तगड़े जवान आकर हम में से किसी एक को घेरते। वे पकड़कर उसे गिराने की कोशिश करते, साथी विरोध करता, शक्ति रहते उनसे लड़ता। एक बनाम आठ-दस की कुछ देर की कुश्ती में जब वह साथी क़ाबू में आ जाता तो वे लोग उसे दबा कर बैठ जाते। फिर डॉक्टर एक लम्बी रबड़ की नली नाक के रास्ते से पेट में घुसेड़ने की कोशिश करता। भूख हड़ताली खाँस कर, हबकी लेकर नली को पेट में जाने से रोकता। इस कसरत में कभी-कभी नली मुँह में आ जाती तो अनशनकर्ता उसे दाँतों से दबाकर पड़ जाता। उसके बाद सब्र की परीक्षा आरम्भ होती। अपनी बेबसी में कभी-कभी डॉक्टर धैर्य खो बैठता और नाराज़ होकर भुनभुनाता हुआ उसे छोड़कर दूसरे की कोठरी की ओर अपने दलबल के साथ चल देता। डॉक्टर हारता और उस साथी की विजय होती।

यतीन्द्रनाथ दास को उस कसरत का पहले का अनुभव था, अस्तु पहले ही दिन डॉक्टर को उनके सामने पराजित होना पड़ा। जिस डॉक्टर का उनसे पाला पड़ा था, वह लाहौर के किसी पागलख़ाने का इंचार्ज था और ज़बर्दस्ती दूध पिलाने की कला का विशेषज्ञ कहकर लाया गया था। पागलों के साथ रहते-रहते उसका अपना स्वभाव भी बहुत कुछ पागलों जैसा हो गया था। पागलों का संसर्ग और विशेषज्ञ होने का अहम् – इन दोनों ने मिलकर उसे क्रोधी भी बना दिया था। दास के हाथों पहले ही दिन की हार से वह बेहद चिढ़ गया और वहीं खड़े होकर सबके सामने दास को चुनौती देते हुए उसने कहा, "कल देखूँगा आप कैसे मेरे काम में बाधा डालते हैं।" उत्तर में दास ने मुस्कुरा भर दिया और वह लम्बे क़दम बढ़ाता दूसरे साथी की ओर चला गया।

तीसरे दिन, अर्थात् 26 जुलाई, 1929 को अन्य साथियों से फ़ुरसत पाने के बाद उसने दास को सबसे अन्त में पकड़ा। वह उनसे फ़ुरसत में निपटना चाहता था। कुश्ती और धरपकड़ का पहला अध्याय जब समाप्त हो गया और जवानों ने दास को पूरी तरह क़ाबू कर लिया तो उसने नाक से नली डाली जिससे दास ने मुँह से निकाल कर दाँतों से दबा लिया। डॉक्टर ने दूसरी नली उनकी दूसरी नाक में डालनी आरम्भ की। दास का दम घुटने लगा। फिर भी मुँह खोले बग़ैर वे दूसरी नली को भी पेट में जाने से रोकने का प्रयास करते रहे। दूसरी नली पेट में न जाकर उनके फेफड़ों में चली गयी। डॉक्टर जल्दी में था। वह अपनी विजय को हाथ से जाने नहीं देना चाहता था। दम घुटने के कारण दास की आँखें उलट चुकी थीं लेकिन उनके चेहरे की ओर देखे बिना ही डॉक्टर ने लगभग एक सेर दूध उनके फेफड़ों में भर दिया और अपने विजयोल्लास में उन्हें छटपटाता छोड़कर चला गया।

यह घटना अस्पताल में हुई थी। उस समय दास के अतिरिक्त लगभग आधा दर्जन और साथी भी अस्पताल पहुँच चुके थे और वे सब एक ही बैरक में बन्द थे। दास को छटपटाते देख वह सब उनके पास पहुँच गये। दास के शरीर का तापक्रम तेज़ी से बढ़ रहा था। उन्हें रह-रहकर ज़ोर की खाँसी आ रही थी और वे साँस लेने में कठिनाई अनुभव कर रहे थे। उनकी यह हालत देखकर अन्य साथियों ने शोर मचाना आरम्भ किया। लगभग आधे घण्टे बाद डॉक्टरों का दल वापस आया। दास को देखकर उनके होश उड़ गये। उन्होंने उन्हें ज़मीन से उठा कर चारपाई पर डाला और जब उनके मुँह में दवाई डालने लगे तो अर्द्धमूर्छित अवस्था में भी दास में न जाने कहाँ की चेतना जाग उठी और उन्होंने कसकर मुँह बन्द करते हुए अँग्रेज़ी में कहा 'नहीं'। हम लोगों में से जब कुछ साथियों ने दवा खाने का अनुरोध किया तो उस यंत्रणा के बीच भी उनके चेहरे पर मुस्कुराहट दौड़ गयी। वे समझ गये कि साथियों के संकल्प पर ममता की विजय हुई है और उन्होंने हँसकर हमारा अनुरोध अस्वीकार कर दिया। उन्होंने अन्त तक न तो इंजेक्शन ही लिया और न कोई दवा खायी। उनकी उस स्थिति में अब बल प्रयोग का कोई प्रश्न ही नहीं था। अस्तु डॉक्टरों को बाहरी उपचार (सीने पर लेप और मालिश आदि) पर ही सन्तोष करना पड़ा। दास को निमोनिया घोषित कर वे चले गये।

उक्त घटना के लगभग दो तीन घण्टे बाद उनकी खाँसी का क्रम कुछ ढीला पड़ा और कुछ स्वस्थ होने पर उन्होंने आँखें खोल दीं। हम सबको अपने चारों ओर देखकर एक बार फिर उनके चेहरे पर मुस्कुराहट दौड़ गयी। बड़ी धीमी आवाज में जितेन्द्रनाथ सान्याल को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा, "अब मैं उनकी पकड़ में नहीं आ सकूँगा।"

उस दिन से तिल-तिल कर मौत की ओर सरकने का उनका क्रम आरम्भ हुआ। शहादत की ओर ले जाने वाले हर क्षण के साथ उनके शान्त और सौम्य चेहरे पर दृढ़ संकल्प की लकीरें गहरी होती गयीं।

कुछ ही दिनों में उनकी हालत ख़राब हो गयी। शरीर में विष फैल गया और आँखें मुँदी-मुँदी सी रहने लगीं। डॉक्टरों ने एनिमा देना चाहा किन्तु दास उसके लिए भी राज़ी न थे। कांग्रेस के नेताओं तथा डिफ़ेन्स कमेटी के सदस्यों का अनुरोध भी कुछ काम न आया। किसी ने सरकार को सुझाया कि शायद वे भगतसिंह की बात मान लें। इस पर केन्द्रीय कारागार से भगतसिंह को लाया गया। उसके एक बार अनुरोध करते ही दास ने एनिमा की स्वीकृति दे दी। इस पर जेल के एक उच्च अधिकारी ने दास से पूछा कि इसी बात के लिए आपने सबका अनुरोध ठुकरा दिया था तो फिर भगतसिंह के कहने पर आप कैसे मान गये? उत्तर में उन्होंने कहा, "श्रीमान जी, आप नहीं जानते भगतसिंह कितना बहादुर आदमी है। मैं उसकी बात कभी नहीं टाल सकता हूँ।"

इसी प्रकार एक अन्य अवसर पर भगतसिंह ने उनसे दवा पीने का अनुरोध किया तो उन्होंने कहा: "देखो भगतसिंह, मैं जानता हूँ कि मुझे अपनी प्रतिज्ञा से पीछे नहीं हटना चाहिए, पर मैं तुम्हारा कहना भी नहीं टाल सकता। ख़ैर, अब आगे मुझसे कुछ मत माँगना।"

उनकी हालत ख़राब होते देख पहले तो सरकार ने उन्हें मेयो अस्पताल ले जाना चाहा। लेकिन दास द्वारा अस्पताल जाने से इन्कार कर देने पर उसने उन्हें ज़मानत पर रिहा करने का निश्चय कर लिया। ज़मानतदार के रूप में उसे बाहर कोई फ़र्ज़ी सेठ मिल गया था। अचानक अपनी रिहाई का समाचार सुनकर उन्होंने हम सब को अपने चारों ओर जमा कर लिया। "यह सब जाल है" उन्होंने कहा। "सरकार जानती है कि मैं बचूँगा नहीं। वह मेरी मृत्यु का उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर लेना नहीं चाहती। वह मुझे जेल के फाटक से बाहर निकालकर मुझसे मुक्ति पाना चाहती है। मैं ऐसा नहीं होने दूँगा।" यह कहकर उन्होंने हम लोगों की ओर देखा। बोले, "मैं यहीं तुम लोगों के बीच रहकर लड़ते-लड़ते मरना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि शक्ति रहते तुम लोग मेरे यहाँ से हटाये जाने का विरोध करो।"

उस समय हमारे अनशन को डेढ़ महीने से अधिक हो चुका था और दो एक को छोड़कर प्रायः सभी साथी कमज़ोर हो जाने के कारण अस्पताल में ही थे। दास की बातों से उस कमज़ोरी की हालत में भी साथियों में न जाने कहाँ की शक्ति आ गयी। अस्पताल की बैरक का दरवाज़ा अन्दर से बन्द कर लिया गया। फिर सबों ने अपनी-अपनी लोहे की चारपाईयाँ, मेज़ें, अलमारियाँ आदि खींच कर दरवाज़े पर भिड़ा दीं और सक्रिय विरोध के लिए तैयार हो गये। दास ने अपनी चारपाई पर लेटे-लेटे आँखें खोलकर चारों ओर देखा और कहा, "अब ठीक है।"

कुछ देर बाद ही जेल के अधिकारी अपने दल-बल के साथ दास को ले जाने के लिए आये। मोर्चेबन्दी देखकर

(पेज 15 पर जारी)

ज़हरखुरानी गिरोह का प्रचार

अगर आप कंगना-शिवसेना की 'तू कुत्ता-तू कुत्ता' से निकल गये हैं, तो ज़रा पढ़िए। 'ज़हरखुरानी गिरोह' के बारे में जिसका ही उत्पाद कंगना जैसे लोग हैं। देखिए कि किस तरह ये ज़हरखुरानी गिरोह समाज को पागल ज़ोंबियों में तब्दील करने पर आमादा हैं। ये हमारे चारों ओर दिनोरात अपने ज़हरीले काम में लगे हुए हैं।

– अन्वेषक

बारिश के बाद सड़क पर पानी भरने के साथ ही हवा भी रुक चुकी है। कीचड़ पूरी सड़क पर उसी तरह छा गया है जैसे संघी गिरोह इस समय भारतीय समाज पर छा गया है। सूझते ना बनता है कि अगला क़दम कहाँ रखें। सड़क के एक तरफ़ ख़ाली जगह है, जो कई वर्षों से कूड़ेदान के रूप में प्रयोग हो रही है, उसमें एक छोटा-सा घर कभी रहा होगा, जहाँ उसके कूड़ेदान बनने से पहले लोग रहा करते होंगे। आसमान में अँधेरा छा चुका है, डूबते सूरज की लालिमा अब काला रूप धारण कर चुकी है। दूसरी तरफ़ है किनारे की ओर से पेड़ों से ढँका एक मैदान। लम्बे समय से कटाई ना होने से घास बढ़ गयी है। पार्क के बीच में एक विशालकाय स्ट्रीट लाइट लगी है जो पूरे पार्क में रोशनी पहुँचा रही है। इस समय कुछ लोग पार्क में मौजूद है, कुछ अँधेरे कोने में अकेले बैठे सिगरेट फूँक रहे हैं। एक परिवार, पति-पत्नी और दो बेटे ट्रैक पर दौड़ रहे हैं।

पार्क के छोटे से घुमावदार प्रवेश द्वार से चार लड़के अन्दर आये। सबकी उम्र क़रीब सत्रह से बीस के बीच होगी। वह चारों सीधा पार्क के बीच में पहुँचे, जहाँ पहले से ही उनका हमउम्र एक लड़का बैठा हुआ है। बिना किसी अभिवादन के पाँचों खड़े हुए, एक दूसरे की तरफ़ देखा मानो कि अब तैयार हैं और अपने हाथों को तय गति में उठाते हुए छाती की तरफ़ तिरछा करके रख लिया और एक साथ बोलने लगे –

नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमे
त्वया हिन्दुभूमे सुखं वर्धितोऽहम्।
महामंगले पुण्यभूमे त्वदर्थे
पतत्वेष कायो नमस्ते नमस्ते।

पाँचो ठीक उसी तरह गा रहे थे जैसे स्कूल में बच्चों को कोई पाठ रटाया जाता है। फिर सब एक गोल घेरा बनाकर बैठ गये। एक लड़का जो पहले से ही वहाँ बैठा था, हाफ़ ख़ाकी पेंट और ऊपर नीली धारीदार रंग की टीशर्ट पहने हुए था, उसके पैर ज़रूरत से ज़्यादा फूले लग रहे थे, ऊपर पहनी हुई टी-शर्ट भी टाइट हो रही थी, बाल बेतरतीब कटे हुए बिल्कुल छोटे थे। उसे देखकर उस चिढ़ी हुई बिल्ली का ध्यान आ रहा था, जो सबको नोचने के लिए तैयार रहती है। वह बोला :

"तो अगली मीटिंग मंदिर में होगी यह तो पता चल गया होगा आप सबको।"

"जी केशव जी," सबने एक स्वर में जवाब दिया।

उनमें से सबसे लम्बे और घुँघराले बालों वाले लड़के ने कहा :

"केशव जी! हमारी पिछली कार्रवाई का क्या असर रहा?" उन्हें बात करते देखकर लगता था कि औपचारिकता का अदब उनमें कूट-कूट के भरा गया है। यहाँ तक कि आल्थी-पाल्थी मारकर बैठने के बाद से किसी ने भी अपनी मुद्रा नहीं बदली थी। अपनी भौंहों को एक तरफ़ उठाते हुए केशव बोला :

"मोहन जी! अब हमारी बातों का असर होना शुरू हो चुका है। इस बार हमारा लक्ष्य प्राप्त होते-होते रह गया, लेकिन फिर भी हमारे इलाक़े में हिन्दू भाई इकट्ठा हो रहे हैं। आज नहीं तो कल हम कामयाब जरूर होंगे।"

एक गहरी साँस लेने के बाद उसने अपनी बात जारी रखी :

"अच्छा यह बताइए, कौन विद्यार्थियों के बीच काम करेगा और कौन बालकों के बीच?"

मोहन उनमें से सबसे पहले बोला- "केशव जी! मैं कॉलेज चला तो जाऊँ पर दाख़िला नहीं हो पा रहा है।"

"चलिए देखते हैं नगरसेवक से बात करके आपका दाख़िला करवाते हैं। अमित जी! आप बताइए?"

लम्बे बाल, चौड़े मुँह वाला लड़का जो बड़े गौर से उसकी बात सुन रहा था, चेहरे पर कोई भाव लाये बिना बोला :

"अभी हम शाखा प्रमुख के तौर पर ही काम करेंगे।"

सोनू सबसे छोटा था और अभी उसे चेहरे पर गम्भीरता लाना नहीं आया था, जिसमें बाक़ी लड़के पारंगत हो चुके थे। बड़ी कोशिशों के बावजूद उसके चेहरे पर नौजवानी का लाल रंग दिख ही जाता, उसकी आँखों में थोड़ा डर भी था जिसके कारण वह सबसे नज़र बचा रहा था। झिझकते हुए उसने कुछ बोलने का प्रयास किया :

"केशव जी! हम लोग ये सब क्यों कर रहे हैं?"

प्रश्न पूछने के बाद में उसकी आँखे मासूमियत से केशव को देख रहीं थी। केशव को अपने लक्ष्य पर सवाल पसन्द नहीं था, उसे यही सिखाया गया था कि लक्ष्य के प्रति श्रद्धा और समर्पण होना चाहिए, सवाल नहीं, इसीलिए ऐसे प्रश्न पूछने पर वह उत्तेजित हो जाता।

"सोनू जी! आपने अब तक शाखा में क्या सीखा, जो यह सवाल आप पूछ रहे हैं? आपसे मुझे यह उम्मीद नहीं थी।"

उत्तेजना के कारण उसकी दोनों भौंहें बोलते वक़्त ऊपर चढ़ गयीं जिससे वह और भी भोंडा जोकर जैसा लगने लगा। वह बोलता रहा :

"हम स्वयंसेवक है, हमने जीवनभर मातृभूमि की रक्षा करने की शपथ ली है। हमें अपने राष्ट्र को हिन्दू राष्ट्र बनाना है। हमारे पूर्वजों ने हिन्दू राष्ट्र बनाने के लिए क़ुर्बानियाँ दी हैं। लगता है आप भूल गये हैं वीर महाराणा प्रताप से लेकर वीर शिवाजी या वीर सावरकर को... ये वीर इसलिए थे क्योंकि ये सब हिन्दू राष्ट्र बनाना चाहते थे।"

उत्तेजना से उसकी आवाज़ और ऊँची हो गयी थी।

"अब वक़्त आ गया है इस लक्ष्य को पूरा करने का तो आप पूछ रहे हैं कि हम सब यह क्यों कर रहे हैं। सोनू जी! आप इतिहास जानते तो हैं कि किस तरह हमारा देश सदियों से ग़ुलाम रहा है। सबसे पहले मुगलों का, फिर अंग्रेज़ों का, आज़ादी के बाद भी कांग्रेस का ग़ुलाम रहा। अब जब हम इतनी ग़ुलामी के बाद हिन्दू राष्ट्र बनाने की तरफ़ बढ़ रहे हैं तो आप पूछ रहे हैं कि हम यह क्यों कर रहे हैं।"

बाक़ी के सारे लड़के इस बात को ध्यान से सुन रहे थे बिना हिले, जैसे कोई मशीन रखी दी गयी हो। सोनू यह सब सुनकर सहम गया और उसमें कुछ बोलने या पूछने का साहस नहीं रहा।

बारिश के बावजूद माहौल गर्म होता देख, योगेन्द्र जिसके चेहरे पर हल्की-हल्की मूँछ और दाढ़ी उगना शुरू हुई ही थी, अपने सिकुड़े होंठो को चौड़ा करते हुए बोला :

"शाखा में जो नवयुवक आ रहे हैं उनके सवाल बहुत होते हैं, हमें क्या करना चाहिए?"

केशव उत्सुकतावश पूछ बैठा : "कैसे सवाल?"

केशव को सवालों से नफ़रत थी, उसे आदेश मानना और आदेश देना ही सिखाया गया था। योगेन्द्र ने कहा :

"क्या बताऊँ, उनके सवाल बड़े अजीब होते हैं। एक युवक पूछ रहा था : मेरे पिताजी को फ़ैक्ट्री में कम तनख़्वाह मिलती है और उनके मालिक भी हिन्दू हैं तो उन्हें पैसा ज़्यादा क्यों नहीं देते? मेरा तो सर चकरा गया, मैंने बात को घुमा दिया क्योंकि जवाब मेरे पास भी नहीं था। एक युवक बोला : मेरे बग़ल में मुसलमान रहते हैं वह हमेशा मेरी मदद करते हैं, तो वह हमारे शत्रु कैसे हुए? अब आप ही बताइए केशव जी इन सब का क्या जवाब दें?"

केशव गम्भीरता से योगेन्द्र के सवाल सुन रहा था, थोड़ा रुका और बोला :

"योगेन्द्र जी, हमें उन को यह बताना चाहिए कि यह सब अभी हो रहा है, जब हिन्दू राष्ट्र बन जायेगा तो उसमें सब हिन्दू होंगे चाहे वो मलेच्छ हो या कोई और। मालिक का होना तो आवश्यक है, अगर वह नहीं होंगे तो नौकरी कैसे मिलेगी? इसलिए अपने मालिक का सम्मान करना सीखिए। उन्हें समझाइए कि हिन्दू राष्ट्र में आस्था ही इकलौता रास्ता है, बाक़ी सब भ्रम है और वैसे भी जब नये युवक शाखा में आते हैं तो उन्हें खेल खिलाइए, अपने वीरों की गाथा सुनाइए और बताइए कैसे मुगलों ने मन्दिरों को तोड़ा, बाक़ी सब वो अपने आप भूल जायेंगे।"

सोनू केशव की बातें बड़े ग़ौर से सुन रहा था, पर बात ख़त्म होते ही अचानक उसके चेहरे पर प्रश्न चिह्न आ गया, जो उसके ना चाहते हुए भी ज़ाहिर हो गया। केशव जो उनमें अनुभवी था और मण्डल प्रमुख भी, तुरन्त प्रश्न वाले इस भाव को पहचान गया और बोला –

"कहिए सोनू जी! लगता है आप ठीक से समझे नहीं, कुछ पूछना है तो बोलिए।"

सोनू हिचकिचाते हुए बोला : "जब शाखा में नया-नया जुड़ा था, तो आप लोग कितनी अच्छी बातें करते थे, पर अब लगता है कि वह ख़ाली आवरण था, आप लोगों का असल मक़सद कुछ और है, जो अब मैं धीरे-धीरे समझ रहा हूँ।"

मोहन, अमित, योगेन्द्र सब सोनू की तरफ़ ऐसे देख रहे थे मानो उसने कुछ ग़लत बोल दिया, पर केशव ने अपना संयम बरता और कठोर आवाज़ में बोला :

"सोनू जी, आप बड़े उद्दण्ड हो गये हैं, ये अनुशासन के ख़िलाफ़ है, आपको यह नहीं बोलना चाहिए और अगर आगे से आपने ऐसा कुछ बोला तो आपको शाखा से निलम्बित कर दिया जायेगा।"

बाक़ी तीनों ने भी सहमति में सर हिलाया।

"चलिए बैठक को आगे बढ़ाते हैं और मन्दिर में जो मीटिंग होगी उस पर बात करते हैं। कोशिश कीजिए ज़्यादा से ज़्यादा हिन्दू भाई मीटिंग में आयें। सबके घर जाकर उन्हें बुलाइए, जान लीजिए कि यह हमारे लिए महत्वपूर्ण है, अगर इस बार हम सफल हो गये तो नगरसेवक भी हमारा लोहा मानेंगे। कुछ दिन बाद रामनवमी है हमें अधिक से अधिक हिन्दू भाइयों को इस रैली में ले जाना है। रैली हम लोग उन मुल्लों के इलाक़े से लेकर जायेंगे। मीटिंग के बाद सब हिन्दू भाइयों के घरों में तलवार और त्रिशूल पहुँचाने की ज़िम्मेदारी अमित और योगेन्द्र की होगी, मोहन सबके यहाँ भगवा ध्वज पहुँचायेंगे और सोनू जी आप कृपया करके बस मीटिंग में पहुँच जाइएगा, मीटिंग में हमारे नगरसेवक भी रहेंगे जो आपके सवालों का जवाब ढंग से देंगे।"

हल्की-हल्की बूँदे फिर से पड़नी शुरू हो गयी थीं। पार्क में इन पाँचों के अलावा कोई नहीं बचा था। स्ट्रीट लाइट की रोशनी में घास के ऊपर बारिश की बूँदें चमक रही थीं। दूर बादलों में बिजली कड़कने की आवाज सुनाई दे रही थी।

मोहन बोला :

"अब हमें चलना चाहिए, कई तैयारियाँ करनी है और बारिश भी शुरू हो रही है।" पाँचों खड़े हुए और "जय शिवाजी", "भारत माता की जय" का नारा लगाते हुए घुमावदार प्रवेश द्वार से निकल गये।

सोनू अपने सवालों में खोया आगे चल रहा था, केशव जो थोड़ा पीछे था अन्य तीनों के बग़ल में जाकर बोला :

"इस सोनू पर नज़र रखो, यह सवाल करने लगा है। किनके साथ रहता है, क्या पढ़ता है? सब ज्ञात करो। अगर यह सवाल करने लग गया तो हमारे लक्ष्य में बाधा आयेगी।"

बारिश तेज़ हो गयी थी। सब भागकर उसी अँधेर नगरी में लौट गये, जहाँ उन्हें अपने ज़हरखुरानी गिरोह का प्रचार करना था और नयी भर्तियाँ करनी थीं।

एक महान क्रान्तिकारी की आख़िरी लड़ाई

(पेज 14 से आगे)

वे समझ गये कि आसार अच्छे नहीं हैं। शारीरिक दृष्टि से उस समय हममें से किसी की हालत ऐसी नहीं थी कि उसके ख़िलाफ़ बल प्रयोग किया जा सकता। दास ने बाहर खड़े सुपरिन्टेन्डेण्ट से कहला दिया कि उन्हें ज़मानत मंज़ूर नहीं है। टेलीफ़ोन खटके और नाटक आगे बढ़ने से रुक गया। बैरक की मोर्चेबन्दी तब हटी जब अंग्रेज़ सुपरिन्टेन्डेण्ट ने ईसा मसीह की शपथ लेकर विश्वास दिलाया कि वह दास को उनकी इच्छा के विरुद्ध ले जाने की कोशिश नहीं करेगा।

लगभग एक सप्ताह बाद एक दिन उन्होंने फिर सबको अपने चारों ओर जमा किया। जिनमें उठने-बैठने की शक्ति नहीं रह गयी थी उनकी चारपाइयाँ अपने पास करवा लीं। उनके छोटे भाई किरनदास को उनकी देखभाल के लिए उनके पास रहने की अनुमति मिल गयी थी। वे अपने लिए बिस्कुटों का एक पैकेट लाये थे। दास ने अपने हाथ से एक-एक बिस्कुट सब को दिया। बोले, "हम लोग अनशन नहीं तोड़ रहे हैं। यह हमारा अन्तिम सहभोज है – मेरे प्यार का एक प्रतीक मात्र।" सबने बिस्कुट खा लिया। फिर उन्होंने किरनदास से क़ाज़ी नज़रुल इस्लाम का 'बोलो वीर, चिर उन्नत मम शीर' गाना सुना। उस रात काफ़ी देर तक सबको समेटकर वे बातें करते रहे। जो साथी वहाँ नहीं थे और कोठरियों में बन्द थे उन सबकी हालत के बारे में पूछा, वन्देमातरम सुना। वह बुझते दीये की आख़िरी चमक थी। उसके बाद उनकी हालत तेज़ी के साथ गिरने लगी। उनका बोलना बन्द हो गया, हाथों-पैरों में सूजन आ गयी, आँखें भी प्रायः बन्द-बन्द रहने लगीं। लेकिन उस हालत में भी वे हर बात का उत्तर सिर हिलाकर हाँ या ना में दे देते थे। उनकी दिमाग़ी चौकसी में अन्तिम समय तक किसी प्रकार की शिथिलता नहीं आयी।

महाप्रयाण की तैयारी में पहले उनके पैर का अँगूठा संज्ञाहीन हुआ फिर धीरे-धीरे उनके पैर और तब हाथ निश्चेष्ट हुए और फिर आँखों ने साथ छोड़ा। इस सबके बाद भी अन्त तक उनकी संकल्पशक्ति में किसी प्रकार की कमी नहीं आयी।

हालत बिगड़ती देखकर सरकार ने एक बार फिर जेल सुपरिन्टेन्डेण्ट मेजर ब्रिग्स द्वारा कहलाया कि सरकार उन्हें बिना शर्त रिहा करने और उन पर से षड्यंत्र केस की कार्रवाई उठा लेने को तैयार है। उत्तर में यतीन्द्रनाथ ने पूछा कि क्या सरकार ने हमारी माँगें मान ली हैं। और जब उन्हें पता चला कि सरकार अनशनकारियों की माँगों पर विचार किये बग़ैर ही उन्हें रिहा करने की बात कर रही है तो उन्होंने सरकार के सुझाव को मानने से साफ़ इन्कार कर दिया।

अनशन के तिरसठवें दिन 13 सितम्बर, 1929 को उनकी हालत ख़राब देखकर डॉक्टरों ने उन्हें इंजेक्शन लगाना चाहा। उनका अनुमान था कि अचेतन अवस्था में दास को शायद पता ही न चल पायेगा कि उनके इंजेक्शन लगाया जा रहा है। लेकिन जैसे ही उनका हाथ पकड़कर उसमें स्प्रिट मली गयी वैसे ही उन्होंने रुँधे गले से डरावनी आवाज़ में कहा 'नो' और उसके साथ ही डॉक्टरों का दल सहमकर पीछे हट गया। उस घटना के कुछ ही देर बाद उन्होंने सदा के लिए आँखें बन्द कर लीं।

उस दिन प्रातःकाल से ही अधिकारियों ने उन साथियों को भी जो कोठरियों में बन्द थे, लाकर अस्पताल में कर दिया था। सबों ने ख़ामोशी के साथ उनके चारों ओर खड़े होकर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की, डॉक्टरों ने क़तार में खड़े होकर मस्तक झुकाया और जेल के अंग्रेज़ सुपरिन्टेन्डेण्ट ने टोपी उतार कर फ़ौजी सलाम से उनका सम्मान किया।

दास की हालत ख़राब है यह समाचार प्रातःकाल से ही लाहौर में आँधी की तरह फैलता जा रहा था और जेल के फाटक पर शव के अन्तिम दर्शनों के लिए सारा शहर उमड़कर जमा हो गया था। लाहौर में, लाहौर से कलकत्ते ले जाते समय मार्ग के स्टेशनों पर, और फिर कलकत्ते में दास के शव को जो सम्मान मिला वह देश के इतिहास में आज भी अद्वितीय है। मृत्यु के बाद सी.आर. दास, भगतसिंह, गांधी जी, रवीन्द्रनाथ टैगोर और पण्डित नेहरू को छोड़कर शायद ही किसी दूसरे व्यक्ति को जनता का इतना आदर और सम्मान मिला हो।

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2020-2022
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

अभूतपूर्व बेरोज़गारी : यह कोई दैवीय आपदा नहीं, पूँजीवाद और मोदी सरकार की पैदा की हुई है!

झूठे मुद्दों की भूलभुलैया से निकलो, रोज़गार के लिए सड़कों पर उतरो!

(पेज 1 से आगे)

मात्र 691 लोगों को काम मिला, जो 0.1% यानी 1000 में 1 से भी कम है।

सीएमआईई की ताज़ा रिपोर्ट में बताया गया है कि मार्च से जुलाई के बीच देश में 1.9 करोड़ वेतनभोगियों की नौकरी चली गयी। इस जुलाई 2020 में 50 लाख नौकरियाँ गयीं, यही अनुमान अगस्त के बारे में है। अर्थशास्त्रियों का कहना है कि हालात अभी और बुरे होंगे। बेरोज़गारी दर 9.1% पहुँच गयी है। यह अभूतपूर्व है।

सरकार की ओर से यह भ्रम फैलाने की कोशिश की जा रही है कि बेरोज़गारी का संकट महामारी की वजह से है और ऐसा पूरी दुनिया में हो रहा है। मगर सच यह है कि सीएमआईई के अनुसार वेतन वाली नौकरियाँ लम्बे समय से बढ़ ही नहीं रही हैं। 2019-20 में ऐसी नौकरियाँ 8.6 करोड़ थीं जो लॉकडाउन के बाद 21% कम होकर अप्रैल 2020 में 6.8 करोड़ रह गयीं और जुलाई के अन्त तक 6.72 करोड़ रह गयी हैं।

बहुत से लोगों को लगता था कि केवल मज़दूरों और छोटे कर्मचारियों के रोज़गार पर संकट है और सरकारी या बड़ी कम्पनियों के कर्मचारियों के लिए ज़्यादा चिन्ता की बात नहीं है। मगर असलियत यह नहीं है। न केवल ख़ाली पड़े पद भरे नहीं जा रहे हैं बल्कि पहले से मौजूद नौकरियों को भी ख़त्म किया जा रहा है।

देश में सबसे ज़्यादा रोज़गार देने वाले सरकारी उपक्रमों की हालत ख़राब है। भारतीय रेल के कर्मचारियों की संख्या 20 वर्ष में 18 लाख से घटकर क़रीब 9 लाख रह गयी है। रेलवे में क़रीब सवा दो लाख पद ख़ाली होने पर भी भरे नहीं जा रहे। अभी रेलवे ने 500 ट्रेनों को बन्द करने और 10,000 स्टेशनों को बन्द करने की घोषणा कर दी है। ट्रेनों और स्टेशनों का निजीकरण पहले ही शुरू हो चुका है। रेलवे और रोडवेज़ के वर्कशॉपों को भी प्राइवेट करने की तैयारी चल रही है। बैंकों की वैकेंसी पहले ही काफ़ी कम हो गयी थीं, अब कई बैंकों को आपस में मिला देने के बाद बैंकों की नौकरियों में और भी कमी आने वाली है। बचे हुए सरकारी स्कूल बन्द किये जा रहे हैं, सरकारी अस्पतालों की हालत ख़राब कर दी गयी है।

आज हालत यह है कि केन्द्र व राज्य सरकारों की मिलाकर 100 से अधिक परीक्षाएँ लटकी हुई हैं जिनसे 10 करोड़ से अधिक प्रतियोगी छात्र सीधे तौर पर प्रभावित हैं। इनमें कई परीक्षाएँ तो सात-सात साल से अधर में लटकी हैं। सरकार अपने सभी विभागों में नौकरियाँ ख़त्म कर रही है। आर्थिक संकट में फँसी सरकार कर्मचारियों पर ख़र्च हर हाल में कम करना चाहती है। यह मत सोचिए कि इनसे ख़ाली होने वाली जगह पर युवाओं को मौक़ा दिया जायेगा। दरअसल यह सरकारी नौकरियों को धीरे-धीरे करके कम करते जाने की एक और कोशिश है।

पिछले सितम्बर को वित्त मंत्रालय से विभिन्न मंत्रालयों व विभागों के लिए एक निर्देश जारी हुआ कि कोई नया पद सृजित न करें। हालाँकि अगले ही दिन देश के कई इलाक़ों में छात्रों-युवाओं के आन्दोलन के दबाव में वित्त मंत्रालय ने सफ़ाई दे दी कि फ़ण्ड की कमी के कारण सरकारी पदों की भर्ती पर कोई रोक या प्रतिबन्ध नहीं लगा है। सामान्य भर्तियाँ चलती रहेंगी। लेकिन यह आँख में धूल झोंकने की कोशिश है।

यह ख़बर भी आ चुकी है कि सरकार हर मंत्रालय तथा विभाग में 50 से 55 वर्ष उम्र के बीच के या 30 वर्ष नौकरी कर चुके कर्मचारियों का एक रजिस्टर तैयार करवा रही है। इसके आधार पर हर तिमाही में उनके काम की समीक्षा की जायेगी और मानकों पर खरे न उतरने पर उनकी सेवा समाप्त कर दी जायेगी। देश का सबसे बड़ा बैंक एसबीआई अपने 30 हज़ार कर्मचारियों को स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति देने की घोषणा कर चुका है। पुलिस महकमे में भी छँटनी का प्रस्ताव आ चुका है।

इसके साथ ही, सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को मोदी सरकार जिस तरह अन्धाधुन्ध अपने चहेते पूँजीपतियों को बेच डाल रही है, या ठेके पर दे रही है, उसका सीधा असर यह होगा कि नौकरियाँ बड़े पैमाने पर ख़त्म होंगी।

कोरोना महामारी के आने से पहले ही, 2019 में लगातार उत्पादन गतिविधियों में भारी गिरावट दिख रही थी। कारों और दो पहिया वाहनों के सैकड़ों शोरूम देशभर में बन्द हो गये थे। पहली बार बिजली के ख़र्च में कमी आयी थी क्योंकि कारख़ाने अपनी क्षमता से बहुत कम पर काम कर रहे थे। उद्योग, व्यापार, खेती सभी सुस्ती का शिकार थे। इसलिए वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण का यह बयान मोदी सरकार को बचाने के लिए बोला गया एक बड़ा झूठ है कि अर्थव्यवस्था की मन्दी "दैवी आपदा" के कारण है।

इसके बाद लॉकडाउन के कारण हालत यह हो गयी है कि राजधानी से लगे नोएडा में 300 से ज़्यादा फ़ैक्ट्रियों पर ताले लग गये हैं और पाँच हज़ार से ज़्यादा फ़ैक्ट्रियाँ बन्द होने के कगार पर हैं। सबसे ज़्यादा असर गारमेंट, इलेक्ट्रॉनिक्स सामान बनाने वाली फ़ैक्ट्रियों पर पड़ा है। गारमेंट फ़ैक्ट्रियों में मशीनें धूल खा रही हैं और जहाँ सैकड़ों लोग काम करते थे उन जगहों पर सन्नाटा पसरा है। लघु और मध्यम उद्योगों की हालत भी अच्छी नहीं है। नोएडा के इण्डस्ट्रियल इलाक़े में सन्नाटा छाया है और हर दूसरी-तीसरी फ़ैक्ट्री में फ़ैक्ट्री किराये पर देने के बोर्ड टँग चुके हैं।

बन्द पड़ी फ़ैक्ट्री और तनख़्वाह समय से न मिलने की मार मज़दूरों पर बुरी पड़ी है। नोएडा के डीएम ऑफ़िस में रोज़ ही मज़दूर अपने पैसे न मिलने की शिकायत लेकर आते हैं और पुलिस-प्रशासन से उनकी झड़प होती है। जो फ़ैक्ट्रियाँ खुली हैं, वहाँ बेरोज़गारों का मेला लगा है। देश के ज़्यादातर औद्योगिक क्षेत्रों का कमोबेश यही हाल है।

भारी संख्या में रोज़गार देने वाले सेवा क्षेत्र (सर्विस सेक्टर) में लगातार छठे महीने गिरावट देखने को मिली है। समाचार एजेंसी रॉयटर्स ने उद्योगों के एक सर्वे के हवाले से रिपोर्ट दी कि कारोबारी गतिविधियाँ प्रभावित होने से अगस्त में भी नौकरियाँ जाने का सिलसिला जारी रहा। सर्वे कहता है कि अर्थव्यवस्था में भारी गिरावट के बाद सर्विस सेक्टर में सुधार में लम्बा समय लगेगा।

सेंटर फ़ॉर इण्डियन इकोनॉमी के मुताबिक़, लॉकडाउन लगने के एक महीने के बाद से क़रीब 12 करोड़ लोग अपने काम से हाथ गँवा चुके हैं। इनमें अधिकतर लोग असंगठित और ग्रामीण क्षेत्र से हैं। दोबारा आर्थिक गतिविधियाँ शुरू होने और फ़सल की अच्छी पैदावर की वजह से जुलाई-अगस्त में काफ़ी लोगों को काम मिला लेकिन स्थिति ज़्यादा समय तक रहने वाली नहीं है।

सीएमआईई के आकलन के मुताबिक़, वेतन पर काम करने वाले संगठित क्षेत्र में 1.9 करोड़ लोगों ने अपनी नौकरियाँ लॉकडाउन के दौरान खोयी हैं। अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन और एशियन डेवलपमेण्ट बैंक की एक अन्य रिपोर्ट में यह अनुमान लगाया गया है कि 30 की उम्र के नीचे के क़रीब चालीस लाख से अधिक भारतीयों ने अपनी नौकरियाँ महामारी की वजह से गँवायी हैं। 15 से 24 साल के लोगों पर सबसे अधिक असर पड़ा है। सीएमआईई के मैनेजिंग डायरेक्टर महेश व्यास का कहना है कि 30 साल से कम उम्र वाले ज़्यादा प्रभावित हुए हैं। कम्पनियाँ अनुभवी लोगों को रख रही हैं और नौजवानों पर इसकी मार पड़ रही है।

महेश व्यास कहते हैं कि ट्रेनी और प्रोबेशन पर काम करने वाले अपनी नौकरियाँ गँवा चुके हैं। कम्पनियाँ अब कैंपस में जाकर नौकरी नहीं दे रही हैं। किसी भी तरह की कोई नियुक्ति नहीं हो रही है। जब 2021 में काम की तलाश करने वाले युवाओं का अगला बैच तैयार होगा तो वो बेरोज़गारों की फ़ौज में शामिल होंगे।

पिछले साल के सीएमआईई के सर्वे में पाया गया था कि क़रीब 35 प्रतिशत लोग मानते थे कि उनकी आय पिछले साल की तुलना में बेहतर हुई है जबकि इस साल सिर्फ़ दो फ़ीसद लोगों का ऐसा मानना है। मज़दूरों से लेकर उच्च मध्यम वर्ग तक के लोगों की आमदनी में कटौती हुई है। एक रिपोर्ट के मुताबिक़, नौकरी जाने और वेतन में कटौती की भरपाई करने के लिए वेतनभोगी लोगों ने लॉकडाउन के चार महीनों में क़रीब पौने तीन सौ करोड़ रुपये अपनी ज़रूरी बचत से निकाले। कई शहरों में मध्य वर्ग के लोग अपने गहने गिरवी रखकर क़र्ज़ ले रहे हैं।

लेकिन जिस मेहनतकश आबादी के पास न तो पुरानी बचत है और न ही गिरवी रखने के लिए सोना-चाँदी, बेचने के लिए केवल अपना श्रम है, वे कैसे गुज़ारा कर रहे हैं, इसका सिर्फ़ अनुमान ही लगाया जा सकता है, या उनके घरों में जाकर देखा जा सकता है।

नौकरी नहीं रहने की वजह से ज़्यादा से ज़्यादा लोगों के हाथ से काम-धन्धा छिन रहा है। लेकिन यह कोई अचानक से आयी तब्दीली नहीं है। अर्थशास्त्री विनोज अब्राहम की ओर से 2017 में किये गये अध्ययन में यह बात साफ़ तौर पर सामने आयी थी कि 2013-14 और 2015-16 के बीच रोज़गार में आज़ादी के बाद संभवत: पहली बार इतनी भारी गिरावट आयी है। यह अध्ययन श्रम ब्यूरो से इकट्ठा किये गये डेटा को आधार बनाकर किया गया था।

श्रम भागीदारी से अर्थव्यवस्था में सक्रिय कार्यबल का पता चलता है। सीएमआईई के मुताबिक़, यह श्रम भागीदारी 2016 में लागू की गयी नोटबन्दी के बाद 46 फ़ीसद से घटकर 35 फ़ीसद तक पहुँच गयी थी। इसने भारत की अर्थव्यवस्था को बहुत बुरी तरह से प्रभावित किया। इस समय 8 फ़ीसद की बेरोज़गारी दर इस बदतर स्थिति की हक़ीक़त बयान नहीं करती है। महेश व्यास कहते हैं कि ऐसा तब होता है जब लोग नौकरी की तलाश करना बेकार समझने लगते हैं क्योंकि नौकरी होती ही नहीं है।

पिछले कुछ सालों से स्किल इण्डिया, मेक इन इण्डिया, प्रधानमंत्री रोज़गार सृजन कार्यक्रम, प्रधानमंत्री रोज़गार प्रोत्साहन योजना, प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना जैसी तरह-तरह की योजनाएँ बनायी गयी हैं और इन योजनाओं के प्रचार पर अरबों रुपये फूँक दिये गये। लेकिन इन योजनाओं के दफ़्तर और प्रचार सँभालने वाले लोगों को रोज़गार देने के अलावा देश में बेरोज़गारी कम करने की दिशा में कोई प्रगति नहीं हुई है। ज़्यादातर योजनाएँ तो चुनावी घोषणाओं की तरह बिना किसी तैयारी के शुरू कर दी गयी हैं। उद्योगों की ज़रूरतों और युवाओं को सिखाये जा रहे कौशलों में कोई तालमेल ही नहीं है और अधिकांश मामलों में दी जा रही ट्रेनिंग इतनी घटिया है कि उससे कोई रोज़गार नहीं मिल सकता।

अक्सर कहा जाता है कि सभी को शिक्षा और रोज़गार दिया ही नहीं जा सकता। सरकार की यह ज़िम्मेदारी ही नहीं है। दरअसल हमारे दिमाग़ में इस तर्क को कूट-कूट कर बैठा दिया गया है ताकि हम इसे अपना अधिकार समझकर इसकी माँग ही न करें। आज भी अनेक भक्त यह तर्क देते मिल जायेंगे कि रोज़गार के लिए सरकार पर निर्भर क्यों रहते हो। मगर सच्चाई क्या

(पेज 2 पर जारी)

बेरोज़गारी की वजह से आत्महत्याओं में भारी बढ़ोत्तरी

भयावह बेरोज़गारी और ग़रीबी में बढ़ोत्तरी के कारण भारत में दिहाड़ी मज़दूरों की आत्महत्या की घटनाएँ भी बढ़ रही हैं। 2019 में देश में हुई कुल आत्महत्याओं में दिहाड़ी मज़दूरों का हिस्सा 23.4 प्रतिशत रहा। प्रधानमंत्री मोदी के कार्यकाल की तुलना करें तो यह छह साल पहले के मुक़ाबले दोगुना है। देश में 2019 में कुल 139,123 लोगों ने आत्महत्या की। इनमें 32,563 लोग दिहाड़ी मज़दूर थे।

तमिलनाडु में सबसे अधिक 5,186 दिहाड़ी मज़दूरों ने आत्महत्या की। उसके बाद महाराष्ट्र में 4,128, मध्य प्रदेश में 3,964, तेलंगाना में 2,858 और केरल में 2,809 दिहाड़ी मज़दूरों ने आत्महत्या की।

ये आँकड़े राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो ने जारी किये हैं। संस्था ने पहली बार 2014 में दिहाड़ी मज़दूरों की आत्महत्या का आँकड़ा देना शुरू किया था। उस साल कुल आत्महत्याओं में दिहाड़ी मज़दूरों का हिस्सा 12 फ़ीसदी था। 2015 में बढ़कर यह 17.8 फ़ीसदी, 2016 में 19.2 फ़ीसदी, 2017 में 22.1 फ़ीसदी और 2018 में बढ़कर 22.4 फ़ीसदी हो गया।

दूसरी तरफ़, 2019 में देश में जितने लोगों ने आत्महत्या की उसमें से बेरोज़गारों का हिस्सा 10.1 फ़ीसदी रहा। 25 सालों में यह पहली बार हुआ है जब बेरोज़गारों की आत्महत्या का हिस्सा दो अंकों में पहुँचा हो। 2019 में देश में 14,019 बेरोज़गारों ने आत्महत्या की। यह पिछले साल के मुक़ाबले 8.37 प्रतिशत अधिक है। 2018 में 12,936 बेरोज़गारों ने आत्महत्या की थी।

हालाँकि ये आँकड़े वास्तविक स्थिति से कम ही रहते हैं फिर भी इनसे अनुमान लगाया जा सकता है कि देश में बेरोज़गारी के हालात किस क़दर जानलेवा हो चुके हैं।

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006